मणि मधुकर की नाट्यभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

MANI MADHUKAR KI NATYABHASHA : EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

शोध प्रबन्ध

कालिकट विश्वविद्यालय की
डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

Thesis
Submitted to the University of Calicut
for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशक :
प्रो. (डॉ.) आर. सेतुनाथ
प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता :
अभिषा. एम.एम
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय
2024

Prof. (Dr.) R. SETHUNATH
Professor & Head (Retd.)
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **"MANI MADHUKAR KI NATYABHASHA : EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN"** is a bonafide record of research work carried out by **ABHISHA. M.M,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

C.U. Campus
Date: 28.09.2024

Prof. (Dr.) R. SETHUNATH
(Supervising Teacher)

Prof. (Dr.) R. Sethunath
Professor & Head, Department of Hindi (Retd.)
University of Calicut
Calicut University.P.O.
Kerala. Pin - 673 635

DECLARATION

I, **ABHISHA. M.M**, do hereby declare that this thesis entitled **"MANI MADHUKAR KI NATYABHASHA : EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN"** is a record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship other similar Title or Recognition. This research work was supervised by **Prof. (Dr.) R. SETHUNATH**, Professor, Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus
Date: 28.09.2024

ABHISHA. M.M
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

अनुक्रमणिका

		पृ.सं.
प्राक्कथन		i-iv
पहला अध्याय - नाट्यभाषा : परिभाषा, सिद्धान्त एवं स्वरूप		1-55
1.1	भाषा की संप्रेषणीयता	
1.2	भाषा और साहित्य	
1.3	भाषा की सृजनात्मकता	
1.4	नाट्यभाषा	
1.4.1	नाट्यभाषा की परिभाषा	
1.4.2	नाट्यभाषा का स्वरूप	
1.4.2.1	बोलचाल की भाषा	
1.4.2.2	काव्यात्मकता	
1.4.3	रंगमंच	
1.4.3.1	शरीर की भाषा	
1.4.3.2	लय	

1.4.3.3 गति

1.4.3.4 वेशभूषा और रूपसज्जा

1.4.3.5 दृश्य-विधान

1.4.3.6 प्रकाश

1.4.3.7 ध्वनि

1.4.3.8 रंगोपकरण

1.4.3.9 आकस्मिकता

1.4.3.10 रंग-संगीत

1.4.3.11 प्रतीक और बिम्ब

1.4.3.12 संवाद एवं अभिनय

1.4.4 नाट्यभाषा के सिद्धान्त

1.4.4.1 नाट्यभाषा : भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण

1.4.4.1.1 भारतीय दृष्टिकोण : भरतमुनि के विचार

1.4.4.1.2 पाश्चात्य दृष्टिकोण

1..4.4.1.2.1 अरस्तु के विचार

1.4.4.2 भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण : तुलना

1.4.4.2.1 समानताएँ

1.4.4.2.2 असमानताएँ

1.4.5 नाटक की संरचना और भाषा

1.4.5.1 स्थिति

1.4.5.2 संदर्भ

1.4.6 नाटक की भाषिक संरचना

1.5 निष्कर्ष

दूसरा अध्याय - नाट्यभाषा : परंपरा एवं वर्तमान 56-142

2.1 हिंदी की नाट्यभाषा और उसका विकास

2.1.1 भारतेन्दु पूर्व युगीन नाट्यभाषा

2.1.2 भारतेन्दु युगीन नाट्यभाषा

2.1.3 द्विवेदी युगीन नाट्यभाषा

2.1.4 प्रसाद युगीन नाट्यभाषा

2.1.5 प्रसादोत्तर युगीन नाट्यभाषा

2.1.6 स्वातंत्र्योत्तर युगीन नाट्यभाषा

2.1.6.1 साठोत्तर हिंदी नाट्यभाषा

2.1.6.1.1 लोकनाट्य शैली का हिंदी नाटक

2.1.7 महिला नाट्य लेखन और नाट्यभाषा

2.1.7.1 मन्नु भण्डारी

2.1.7.2 मृदुलागर्ग

2.1.7.3 कुसुम कुमार

2.1.7.4 त्रिपुरारी शर्मा

2.2 निष्कर्ष

तीसरा अध्याय - मणि मधुकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 143-174

3.1 मणि मधुकर : जन्म व परिवार

3.2 शिक्षा और कार्यक्षेत्र

3.3 मणि मधुकर : व्यक्तित्व

3.3.1 विद्रोही

3.3.2 निर्भीक एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्व

3.3.3 यायावारी प्रवृत्ति

3.3.4 समानता के आकांक्षी

3.3.5 प्रकृति के प्रति लगाव

3.4 मणि मधुकर : कृतित्व

3.4.1 काव्य संग्रह

3.4.2 कहानी संग्रह

3.4.3 उपन्यास

3.4.4 एकांकी संग्रह

3.4.5 नाटक

3.4.6 नुक्कड़ नाटक

3.4.7 रेडियो नाटक

3.4.8 रिपोर्ताज

3.4.9 संस्मरण

3.4.10 जीवनी

3.4.11 संकलन

3.4.12 संपादन

3.4.13 बाल उपन्यास

3.4.14 बाल काव्य

3.4.15 मणि मधुकर का साहित्य - विशिष्ट परिचय

3.4.15.1 नाटककार

3.4.15.2 नुक्कड़ नाटककार

3.4.15.3 एकांकीकार

3.4.15.4 कवि

3.4.15.5 उपन्यासकार

3.4.15.6 कहानीकार

3.4.15.7 रिपोर्ताज

3.4.15.8 संस्मरण

3.5 निर्देशक मणि मधुकर

3.6 अनुवाद

3.7 पुरस्कार

3.8 निष्कर्ष

चौथा अध्याय - मणि मधुकर की नाट्यभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 175-278

4.1 मणि मधुकर की नाट्यभाषा

4.1.1 प्रतीक

4.1.2 मिथक

4.1.3 काव्यात्मकता

4.1.3.1 गद्य-पद्यमय भाषा

4.1.4 भजनशैली

4.1.5 लय

4.1.6 तुक

4.1.7 व्यंग्यात्मकता

4.1.7.1 मंगलाचरण

4.1.8 विराम

4.1.9 मौन

4.1.10 अधूरा संवाद

4.1.11 छोटे-छोटे संवाद

4.1.12 दर्शकों से सीधा संवाद

4.1.12.1 कथागायन

4.1.12.2 टिप्पणी

4.1.13 स्वगत कथन

4.1.14 उक्तियों का प्रयोग

4.1.15 उद्धरण का प्रयोग

4.1.16 दोहे का प्रयोग

4.1.17 संस्कृत सुभाषित श्लोक का प्रयोग

4.1.18 उदाहरण का प्रयोग

4.1.19 विशेषण शब्दों का प्रयोग

4.1.20 समानान्तरता

4.1.21 पुनरावृत्ति

4.1.22 संबोधन

4.1.23 नामहीन पात्र

4.1.24 फंतासी

4.1.25 पैरोड़ी का प्रयोग

4.1.26 मुखौटे का प्रयोग

4.1.26.1 कठपुतली का प्रयोग

4.1.27 शब्दों से जादूगरी

4.1.28 बोलचाल की भाषा और इसका सर्जनात्मक रूप

4.1.28.1 जनभाषा का सृजनात्मक रूप

4.1.29 शब्दों पर बलाघात

4.1.30 ध्वनि सादृश्य

4.1.31 अश्लील संवाद

4.1.32 निरर्थकता में सार्थकता

4.1.33 अप्रयुक्त शब्दों का प्रयोग

4.1.34 अतीत को वर्तमान बननेवाली भाषा

4.1.35 मणि मधुकर की नाट्यभाषा में शब्द प्रयोग

4.1.35.1 अर्ध तत्सम शब्द

4.1.35.2 देशज शब्दों का प्रयोग

4.1.35.3 विदेशी शब्दों का प्रयोग

4.1.35.3.1 अरबी शब्द

4.1.35.3.2 उर्दु, फारसी शब्द

4.1.35.3.3 अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग

4.1.36 मणि मधुकर की नाट्यभाषा में हिंदीतर भाषा का प्रयोग

4.1.36.1 ठेठ राजस्थानी भाषा का प्रयोग

4.1.37 मणि मधुकर की नाट्यभाषा में मुहावरे और लोकोक्तियाँ

4.1.37.1 मुहावरे और लोकोक्तियाँ

4.1.38 संस्कृत की मंत्रोच्चारण रीति

4.1.39 मंचीय भाषा

4.1.39.1 प्रकाश व्यवस्था

4.1.39.2 अंधकार का प्रयोग

4.1.39.3 पूर्वस्मृति (फ्लैशबैंक)

4.1.39.4 वेशभूषा

4.1.39.5 ध्वनि

4.1.39.6 गीत

4.1.39.7 संगीत

4.2 निष्कर्ष

उपसंहार 279-283

परिशिष्ट 284

अध्ययन की संभावनाएँ (Recommendations)

संदर्भ ग्रन्थ सूची 285-302

प्राक्कथन

प्राक्कथन

भाषा बहुआयामी है। वह एक साथ कई भूमिकाएँ निभाती है। भाषा चिंतन का साधन है, और इसके साथ विचारों, अनुभवों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। भाषा जब साहित्यिक प्रयोग में आती है, तो वह उसकी सर्जनात्मकता के कारण विशेष रूप धारण कर लेती है। कोई भी भाषा और साहित्य उस भाषा को इस्तेमाल करनेवाले लोगों की जीवन शैली एवं संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

साहित्य की सभी विधाओं में नाटक की अपनी अलग पहचान है। नाटक में भाषिक एवं भाषेतर माध्यमों का प्रयोग होता है। नाटक की विकास यात्रा में कई तरह के परिवर्तन आ चुके हैं। विशेषकर भाषा की दृष्टि से। नाटक की भाषा आज नए-नए प्रयोगों के साथ साहित्य जगत में अग्रसर हो रही है। नाट्यभाषा को एक व्याकरणिक ढाँचे के अंतर्गत सीमित नहीं कर सकता। इसके अंतर्गत सभी मंचीय तत्वों का समावेश भी होता है। आज नाटक रंगमंच से अधिक जुड़े होने के कारण नाट्यभाषा पर विचार करना अधिक समीचीन होगा।

भाषा की दृष्टि से कई प्रकार के प्रयोग करके नाटक जैसी विधा को महत्वपूर्ण बनानेवाले नाटककारों में प्रमुख है मणि मधुकर। **'मणि मधुकर की नाट्यभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'** शीर्षक प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैंने विख्यात नाटककार मणि मधुकर की नाट्यभाषा का अध्ययन करने का विनम्र प्रयास किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए शोध प्रबन्ध को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। अंत में उपसंहार भी दिया गया है।

पहला अध्याय है - **'नाट्यभाषा : परिभाषा, सिद्धान्त एवं स्वरूप।'** प्रस्तुत अध्याय में नाट्यभाषा की परिभाषा, स्वरूप, नाट्यभाषा में रंगमंच की प्रधानता एवं नाट्यभाषा के विभिन्न पहलुओं की चर्चा की गई है। इसके अलावा नाट्यभाषा के सैद्धान्तिक पक्ष पर चर्चा करके नाटक की संरचना और भाषा एवं नाटक की भाषिक संरचना आदि पर चर्चा की गई है।

दूसरा अध्याय है - **'नाट्यभाषा : परंपरा एवं वर्तमान।'** इसमें हिंदी की नाट्यभाषा को - भारतेन्दु पूर्व युगीन नाट्यभाषा, भारतेन्दु युगीन नाट्यभाषा, द्विवेदी युगीन नाट्यभाषा, प्रसाद युगीन नाट्यभाषा, प्रसादोत्तर युगीन नाट्यभाषा, स्वतंत्र्योत्तर युगीन नाट्यभाषा आदि छह कालखण्डों में विभाजित करके विस्तृत विवेचन किया गया है।

तीसरा अध्याय है- **'मणि मधुकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।'** इसमें मणि मधुकर के जन्म, परिवार, शिक्षा, कार्यक्षेत्र आदि का परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के बाद उनके रचना प्रपंच का परिचय देते हुए उनके बहुमुखी प्रतिभा पर प्रकाश डाला गया है।

चौथा अध्याय है- **'मणि मधुकर की नाट्यभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन।'** इसमें मणि मधुकर की नाट्यभाषा के विभिन्न पहलुओं पर विश्लेषण किया गया है।

अंत में **'उपसंहार'** है। इसमें शोध प्रबन्ध का निष्कर्ष संक्षिप्त रूप में दिया गया है। इसके पश्चात संदर्भ ग्रन्थ सूची में नाटक और सहायक ग्रन्थों की सूची दी गई है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कालिकट विश्वविद्यालय के प्रोफेसर (डॉ.) आर. सेतुनाथ जी के कुशल निर्देशन में संपन्न हुआ है। उनके स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन, प्रेरणा एवं कृपायुक्त मार्ग दर्शन से ही मैं यह शोध प्रबन्ध पूर्ण कर सकी हूँ। उनके प्रति मैं सदा ऋणी रहूँगी। मैं अपने श्रद्धेय गुरुवर के प्रति तहेदिल से आभारी हूँ।

कालिकट विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष प्रोफेसर वी.के. सुब्रह्मण्यन जी ने जो प्रोत्साहन मुझे दिया है। उनके प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ। विभाग के अन्य आदरणीय गुरुजनों और विभाग के भूतपूर्व आचार्यों के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके सहयोग एवं अनुग्रह से ही यह कार्य संपन्न हुआ है।

मणि मधुकर जी की पुत्री श्रीमती मीनल मधुकर जी से मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने मणि मधुकर जी के प्रति जानकारी प्राप्त करने में मुझे सहायता दी है।

कालिकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के कार्यालय के कर्मचारियों और पुस्तकालय कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञता अर्पित करती हूँ।

मेरे माता-पिता, बहन, पति और मेरे पुत्र के सहयोग से मैं यहाँ तक पहूँच गई हूँ। उनके प्रति मैं विशेष रूप से आभार प्रकट करती हूँ।

सविनय

हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

अभिषा. एम.एम
शोध छात्रा

पहला अध्याय

नाट्यभाषा : परिभाषा, सिद्धान्त एवं स्वरूप

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा द्वारा मन के भावों, विचारों और अनुभवों को हम व्यक्त कर सकते हैं। इसी तरह देखें तो भाषा एक बहुमुखी व्यवस्था है। भाषा को बहुमुखी व्यवस्था मानकर प्रो.दिलीपसिंह ने लिखा है - "भाषा एक साथ बहुत कुछ है - वह संप्रेषण की एक बहुमुखी व्यवस्था है, सोचने-विचारने का माध्यम है, सर्जनात्मक अथवा साहित्यिक अभिव्यक्ति का कलात्मक साधन है, एक सामाजिक संस्था है, राजनैतिक विवाद का सर्वकालिक मुद्दा है तो किसी देश को एकता के सूत्र में बाँधने और उसके विकास का ज़रिया भी है।"[1]

1.1 भाषा की संप्रेषणीयता

भाषा संप्रेषण का साधन है। सामाजिकता के रूपायन में भाषा की अहं भूमिका है। व्यक्ति को व्यक्ति से समाज तक ले जोने का आधार ही भाषा की संप्रेषणीयता है। संप्रेषण सिर्फ भाषा के माध्यम से नहीं भाषेतर माध्यमों द्वारा भी संभव है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने भाषेतर माध्यमों को भी भाषा का एक हिस्सा माना है। साहित्य के संदर्भ में, नाटक में भाषेतर माध्यमों का अधिक प्रभाव है। "भाषा जैसे जटिल व्यवहार को हम सिर्फ अपने आप से बात करने के लिए या विचारने के लिए अर्जित नहीं करते, हम इसे अर्जित करते हैं अपने को समाज से

जोड़ने के लिए, सतत संप्रेषण के लिए। हमारे दैनंदिन जीवन में सामान्य बातचीत के लिए भाषा सदा हमारे साथ होती है।"[2]

1.2 भाषा और साहित्य

साहित्य और भाषा के बीच अटूट संबन्ध है। साहित्य के बिना भाषा आत्महीन है, भाषा के बिना साहित्य मूक है। कृष्णकुमार गोस्वामी का मत है कि- "साहित्य का सृजन भाषा के माध्यम से नहीं बल्कि उसके गर्भ से होता है।"[3] साहित्यकार को पाठक वर्ग से संवाद करने का माध्यम है भाषा। सामान्य रूप में प्रयोग की दृष्टि से भाषा को सामान्य भाषा, व्यावसायिक भाषा और साहित्यिक भाषा आदि रूपों में विभाजित किया जा सकता है। साधारणतया सामान्यभाषा का अर्थ हम बोलचाल की भाषा के रूप में ले सकते हैं। उपर्युक्त सभी का आधार सामान्य भाषा ही है। भाषा के अन्य प्रकारों से सामान्य भाषा ही अधिक जीवंत एवं महत्वपूर्ण है। क्योंकि साधारण लोगों द्वारा इसका प्रयोग अधिक होती है। सामान्य भाषा व्याकरण से मुक्त, सहज-स्वाभाविक भाषा है। समकालीन रचनाकारों ने इस सहजता पर विश्वास रखते हुए साहित्यिक रचना केलिए सामान्य भाषा का ही प्रयोग किया जा रहा है।

कुछ विद्वानों ने साहित्यिक भाषा को विशिष्ट एवं सजावटी भाषा मानी हैं। तथा कुछ विद्वानों ने साहित्यिक भाषा को सामान्य भाषा का

एक अंग माना है। साहित्यिक भाषा और सामान्य भाषा दोनों को पृथक माननेवाले विद्वानों का मत है कि- "सौन्दर्यशास्त्र का मूलभूत नियम है कि सौन्दर्य सदैव तिर्यक रेखा में होता है सरल रेखा में नहीं। साहित्यिक भाषा को इस बात की खूब जानकारी है।"[4] सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा का अंतर स्पष्ट करते हुए डॉ.संजय द्विवेदी ने लिखा है- "सामान्य भाषा मूलतः सूचना की भाषा है जो निश्चित बात कहकर विरत हो जाती है दूसरी ओर साहित्यिक भाषा में अर्थ की परतें-की-परतें खुलती जाती है फिर भी नहीं कहा जा सकता कि हम अंतिम परत तक पहूँच गये। अनुषंग से अर्थ की नई-नई झंकारें उत्पन्न होती रहती है। साहित्यिक भाषा में विविध स्थितियों एवं संदर्भों में प्रयुक्त एक ही शब्द विभिन्न अर्थ रखता है।"[5]

कुछ विचारक साहित्यिक भाषा को विशिष्ट एवं सजावटी मानने का विरुद्ध है। इस अवसर पर डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन अधिक महत्वपूर्ण है- "साहित्यिक भाषा मूलतः बोलचाल की वह भाषा है जो विभिन्न रचनाकारों की सृजन प्रक्रिया में समाहित होकर अपने स्वरूप को परिवर्तित कर लेती है। कवि-विशेष के अनुभव की अद्विवतीयता से स्पृक्त होने पर उसकी अर्थक्षमता में कई प्रकार के अंतर उत्पन्न हो जाते हैं।"[6] साहित्यिक भाषा एवं सामान्य भाषा दोनों में कोई अंतर है या

नहीं, यह एक बहुत बड़ा सवाल है। इस अवसर पर यह कहना उचित है कि साहित्यिक भाषा का आधार सामान्य भाषा है। एक साहित्यिक रचना में अलंकार, छन्द, रस, बिम्ब, प्रतीक आदि का प्रयोग होता है, और इन सबको साहित्यिक रचना से निकाल दिया जाये तो भी अंत में भाषा बच जाती है। इससे यह मालूम होता है कि इन सबके बिना भी रचना संभव है।

निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि साहित्यिक भाषा सामान्य भाषा का एक अंग है। इन दोनों में अंतर है तो वह व्युत्पत्तिमूलक अंतर है। कवि या लेखक अपनी बोलचाल की भाषा के साथ अपना अनुभव एवं संवेदना को जोड़कर अधिक तीक्ष्णता के साथ कहें तो उस भाषा की अर्थक्षमता बढ़ जाती है। मूल रूप में दोनों का लक्ष्य संप्रेषण ही है। साहित्यिक भाषा में सिर्फ कोशवासी शब्दों का प्रयोग करना उचित नहीं होगा।

1.3 भाषा की सृजनात्मकता

भाषा जड़ नहीं जीवन्त है। सृजनात्मकता भाषा को जीवन्त बनाती है। मानव भाषा सर्जनात्मक होती है। हम किसी व्यक्ति, अवस्था एवं संदर्भ को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग करते हैं। हमारे अनुभवों और विचारों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए हम भाषा में नए-

नए प्रयोग करते रहते हैं। यह सर्जनात्मकता है। हमारे साधारण बातचीत में भी यह संभव है। हम किसी प्रसंग को विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न श्रोताओं के लिए विभिन्न ढंग से प्रस्तुत करते हैं, यह भी सर्जनात्मकता है। सर्जनात्मक भाषा का एक अनिवार्य अंग है भाषिक इकाईयों का 'चयन'। चयन का शाब्दिक अर्थ है- अनेक से एक को चुनना। काव्य भाषा या शैली विज्ञान में चयन का अर्थ किसी एक भाषा में प्रयुक्त समानार्थक शब्दों से हमारे सुविधानुसार किसी एक को चुन लेना।

भाषा में सर्जनात्मक शक्ति छिपी हुई होती है। इसी सर्जनात्मकता को पहचानने और इस्तेमाल करने की क्षमता हर व्यक्ति में एक समान नहीं होती। अन्य कलाओं से साहित्य को अलग करनेवाली विशेषता उनकी भाषिकता है। साहित्यकार अपने भावों, विचारों एवं अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए सृजनात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं। सर्जनात्मकता एक नैसर्गिक कला है। भाषा की सृजनात्मक शक्ति साहित्य को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाती है। किसी एक रचना को प्रामाणिक सिद्ध करने का एकमात्र साधन सर्जनात्मक भाषा ही है। सर्जनात्मक भाषा में अर्थक्षमता होती है।

हरेक साहित्यिक विधा में भाषा की प्रयोग शैली अलग-अलग होती है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने सृजनात्मक गद्य के अंतर्गत कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाओं को समेट लिया है। लेकिन इन तीनों की भाषा में अंतर अवश्य है। इसमें नाटक की रचना संवाद रूप में है। उपन्यास और कहानी की भाषा विश्लेषणात्मक भाषा है। लेकिन इसमें भी संवाद का प्रयोग किया जाता है। इन विधाओं में संवाद का उतना महत्व नहीं है, जितना नाटक में। अन्य विधाओं के संदर्भ में लेखक सीधे हमसे बातें करते हैं और पात्रों का परिचय भी देता है, पात्रों के अंतर्मन के भावों की व्याख्या, घटनाओं का विवरण और भावों को भी व्यक्त कर देता है। वर्णन, विवरण, आख्यान, निरूपण आदि यहाँ स्वीकार्य है। इसके साथ कभी-कभी संवाद का भी प्रयोग करता है। यह संवाद नाटक के संवाद से बिलकुल अलग है। नाटक के संवाद की विशेषता यह है कि वह क्रियात्मक एवं दृश्यात्मक संवाद है। लेकिन अन्य विधाओं के संवाद में ऐसा कोई शर्त नहीं है।

नाटककार अपनी संवेदना की अभिव्यक्ति रंगमंच के माध्यम से प्रेक्षकों तक पहूँचाता है। यही नाटक की विशेषता है। यह विशेषता उसे अन्य साहित्यिक विधाओं से अलग करती है। भरतमुनि के काल से ही नाटक को दृश्यकाव्य की संज्ञा दी जाती है। दृश्य काव्य होने के कारण

अभिनय एवं रंगमंच से इसका अटूट संबन्ध है। दृश्य काव्य की विशेषता यह है कि इसमें काव्य की तरह कल्पना का महत्व अधिक नहीं होता है। "दृश्य काव्य में कल्पना को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। कल्पना के स्थान पर अभिनय का प्राधान्य दिया जाता है और इसका रूप मूर्त होता है।"[7]

1.4 नाट्यभाषा

नाट्यरचना की आत्मा नाट्यभाषा है। अन्य साहित्यिक विधाओं से नाटक को पृथक करनेवाली महत्वपूर्ण चीज़ उसकी भाषा है। भाषा के लिखित रूप के साथ-साथ दृश्य-विधान, मंचीय तत्व, अभिनय, गति आदि मिलकर नाट्यभाषा अपना सार्थक रूप धारण कर लेती है। रंगमंच में दृश्य और शब्द दोनों एक साथ प्रस्तुत कर सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि नाट्यभाषा के दो रूप होते हैं- लिखित रूप एवं दृश्य रूप। शेक्सपियर के नाटकों में भाषा द्वारा प्रकृति का ऐसा सुन्दर चित्र खींचा है, वह मंच पर उतरना कठिन कार्य है। यह लिखित भाषा की शक्ति है। ईसीतरह दृश्य, अभिनय, मंचीयता द्वारा जिस भाषा का जन्म होता है वह लिखित भाषा द्वारा संभव नहीं है। लेकिन दोनों को पृथक करने में नाट्यभाषा विकृत हो जाती है।

1.4.1 नाट्यभाषा की परिभाषा

कई विद्वानों ने नाट्यभाषा पर अपना मंतव्य व्यक्त किया है। नाटक का आधारग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में भरतमुनि ने नाट्यभाषा पर विस्तृत विवेचन किया गया है। उन्होंने भिन्न-भिन्न स्तरों के लोगों के लिए भिन्न-भिन्न भाषा के प्रयोगों का उदाहरण दिया है।

"अत ऊर्ध्व प्रवक्ष्यामि देशभाषा विकल्पनम्।
भाषा चतुर्विधा त्रेया दशरूपे प्रयोगतः ।।26।।
संस्कृतं प्राकृतं चव यत्र पाठ्य प्रयुज्यते।
अतिभाषार्यभाषा च जाति भाषा तथैव च ।।27।।
तथा योन्यन्तरी चैव भाषा नाट्ये प्रकीर्तिता।
अतिभाषा तु देवानामार्यभाषा तु भुभूजाम् ।।28।।"[8]

भरतमुनि की तरह संस्कृत आचार्य दशरूपककार धनंजय ने भी नाट्यभाषा पर विस्तार से विचार किया है। उन्होंने देश और जाति को ध्यान में रखकर अलग-अलग स्तरों के लोगों के लिए अलग-अलग भाषा के प्रयोग पर बल दिया। उनका मानना यह है कि नायक जिस देश के होंगे पात्र उस देश की भाषा और वेश धारण करना है। भरतमुनि की तरह उन्होंने भी पात्रानुकूल भाषा पर बल दिया।

"देशभाषा क्रियावेषलक्षणाःस्युः प्रवृत्तयः।

लोकोदेवावगम्येता यथौचित्यं प्रयोजयेत् ।।63।।

पाठ्यं तु संस्कृतं नृणामनीचानां कृतात्मनाम्।

लिंगनीनां महादेव्या मन्त्रिजावेश्ययोः क्वचित्।।64।।

स्त्रीणां तु प्राकृतं प्रायः शौरसेन्यधमेषुच।

पिशाचात्यन्तनीचादौ पैशाचं मागधं तथा।।65।।

यद्देशं नीचपात्रं यत्तद्देशं तस्य भाषितम्।

कार्यनश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः।।66।।"[9]

संस्कृत आचार्यों की तरह हिन्दी विद्वानों ने भी नाट्यभाषा पर विचार किया है। नेमीचन्द्र जैन ने नाट्यभाषा को काव्य गुणों से संपन्न एवं बोलचाल की भाषा के निकटवर्ती भाषा के रूप में परिभाषित किया है।

"नाटक की भाषा में एक साथ ही काव्य जैसी गहन लाक्षणिकता, सूक्ष्मता और चित्रवत्ता और बोली जानेवाली भाषा की सी पात्रानुकूल विविधता और लचीलापन भी होता है और समर्थ भाषा की शैली परकता, विशिष्टता और साहित्यिकता थी। श्रेष्ठ नाटक की भाषा ऐसी होती है कि उसमें भाव विचार और चित्र तीनों को वहन करने का सामर्थ्य तो हो, फिर भी बोलचाल की भाषा से बहुत दूर न हो।"[10]

नाट्यभाषा संबन्धी मुद्राराक्षस का मत है- "नाटक की भाषा संज्ञा, सर्वनामवाली भाषा नहीं एक बृहत्तर भाषा होती है जो शब्द रंग, आकृति, दृश्य-विधान, अभिनय, गति और दर्शक की ग्राह्यता के बहुत से धागों से बनी हुई रस्सी होती है।"[11]

डॉ.गोविन्द चातक ने नाट्यभाषा के बारे में कहा है- "नाटक जीवन के घनीभूत क्षणों की अभिव्यक्ति करता है तथा स्थितियों और घटनाओं के सघनीकरण से अपना प्रभाव जुटाता है। इसकेलिए ऐसी भाषा अपेक्षित होती है जो भावना की गहराई, क्रिया गति और बिम्बात्मकता से जुड़कर एक ओर नाट्यानुभूति और दूसरी ओर दृश्य रूपों को उजागर कर सके। इसलिए नाट्यभाषा सामान्य भाषा की तुलना में अधिक अनुभूतिपरक होती है। इसप्रकार नाट्यभाषा की परिणति सामान्यीकृत भावों और मामूली यथार्थ की अपेक्षा विशिष्ट जीवन और अनुभूत बिम्बों के रूप में होती है।"[12]

दयाप्रकाश सिन्हा ने नाट्यभाषा के बारे में कहा है- "रंगभाषा की नाट्य-निर्मिति (प्रोडक्शन) से अलग, अपने आप में कोई अस्तित्व नहीं है। रंग प्रस्तुति के अनेक तत्त्वों, जैसे अभिनय, प्रकाश, परिकल्पना, रूपसज्जा आदि का जितना महत्व है, उतना ही महत्व रंगभाषा का है। इन सब तत्त्वों का महत्व केवल इसमें है कि वे सब एक साथ मिलकर

नाट्य प्रस्तुति के निर्माण में योगदान देते हैं। नाट्यभाषा के लिए अनिवार्य है कि वह नाटक में चित्रित देश तथा काल के अनुसार हो। साथ ही रंगभाषा ऐसी हो, जो पात्रों के चरित्रों को रूपायित करते हुए, दर्शकों को सहज बोधगम्य हो।"[13]

नाट्यभाषा संबन्धी जयशंकर प्रसाद का मंतव्य यह है कि- "मैं तो कहूँगा कि सरलता और क्लिष्टता पात्रों के भावों और विचारों के अनुसार भाषा में होगी ही और पात्रों के भावों और विचारों के ही आधार पर भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए।"[14]

मोहन राकेश ने नाट्यभाषा को अपने परिवेश से जुड़ी हुई भाषा के रूप में पारिभाषित किया।

> "नाटककार के शब्द कुछ इस तरह काम करें जिससे दर्शक की अनुभूति पर उनका ऐसा प्रभाव पड़े कि वह अचानक अपने आपको आस-पास के परिवेश से जुड़ा पाए।"[15]

हिंदी विद्वानों की तरह अंग्रेज़ी विद्वानों ने भी नाट्यभाषा पर अपना विचार व्यक्त किया है।

एडवार्ड बॉन्ड की राय में- "Language, when seen in this light therefore, is not simply a means of representation of already existing

realities and meanings. It is a language which by its performance does something and thus, out of that action, creates new meanings and realities."[16]

गेरेथ लॉयड इवांस की राय में- "We instinctively recognize true dramatic language, certainly when we hear it but also (if we have a receptive inner ear) when we read it, although most people don't read plays. They want to listen to actors, not to the unvisualized imponderables of the inner ear. If the actor is doing his job aright - that is, if he has correctly 'read' the notation of the plays language - we instinctively know, as we listen to him, that this is the real thing."[17]

म्यूरियल ब्रेडब्रुक ने मौखिक भाषा को प्रमुखता देते हुए कहा है - "I presume that everyone would agree that verbal language is the most sophisticated form of language."[18]

संक्षिप्त रूप में कह सकते है कि नाटक में नाटककार जिस भाषा का प्रयोग करता है, वह नाटककार की प्रतिभा, उस समाज विशेष की भाषा की विशिष्टताएँ जिससे नाटककार अपना विचार संप्रेषित करना चाहते हैं, नाटक की विषयवस्तु पात्रगत विशिष्टताएँ, उनके दृश्यत्व बोध आदि पर निर्भर है।

1.4.2 नाट्यभाषा का स्वरूप

नाटक में कथा का विकास संवादों द्वारा होता है। अभिनेता संवाद एवं उसके अभिनय द्वारा नाटक को जीवन्त बना देता है। उस जीवन्तता के साथ प्रेक्षक उसे ग्रहण करता है। नाट्यभाषा की नाटकीयता उसे यथार्थता के साथ जोड़ती है। श्रव्य में दृश्य तत्त्व जुडे होने से नाट्यभाषा सफल हो जाती है। गोविन्द चातक नाट्यभाषा को केवल संप्रेषण के रूप में नहीं, प्रकार्यमूलक भी मानता है। नाटक की भाषा सिर्फ व्याकरणिक ढाँचे से बनी हुई नहीं, इसमें भाषिकता की तरह भाषेतर माध्यमों का भी महत्व है। नाट्यभाषा में क्रियाव्यापार और शब्द एक दूसरे से जुड़कर रहते हैं। उसीतरह इसमें केवल शब्द का ही काम नहीं, शब्द के बिना भी संप्रेषण हो सकती है। अनकहे बातें भी अर्थ का द्योतक बन जाती है। परस्पर विरोधी संवाद में अभिधार्थ का नहीं व्यंग्यार्थ का काम होता है। अभिनय के माध्यम से भी व्यंग्यार्थ प्रकट कर सकता है। नाटक की भाषा जीवन की भाषा इसलिए बन जाती है कि इसमें मानव मन की अनुभूतियाँ, स्थितियाँ और क्रियायें हमेशा जुड़ी होती हैं। एक सफल अभिनेता नाट्यभाषा में शब्दों से बने अर्थ से ज़्यादा अर्थ भर देता है।

नाट्यभाषा की संरचना में कई तत्त्व समाहित हैं। इसका मतलब यह नहीं कि नाट्यभाषा सिर्फ कई तत्वों का जोड़ है। फिर भी हम कह सकते हैं कि नाट्यभाषा एक समस्त नाटकीय, रंगीय, भाषिक एवं संवादीय संरचना है। हरेक विधा की तरह नाट्यभाषा पर भी विधा की अपेक्षा होती है। "नाटक में भाषा अपने में पूर्ण और समग्र जीवन को समाहित करती है। इसलिए वह केवल आधारवस्तु (content) की वाहिका बनकर नहीं रह जाती, वरन् वह स्वयं आधारवस्तु बन जाती है। ऐसी स्थिति में वह अपने को गढ़ने की प्रक्रिया में कथानक, चरित्र, स्थिति, वातावरण, संवाद योजना आदि पर आश्रित ही नहीं रहती, उसी में अपने को निर्मित भी करती है। इसलिए भी नाटक की भाषा में विधात्मक संरचना का दबाव औरों से कहीं अधिक होता है।"[19]

नाटक का ढांचा अन्य साहित्यिक विधाओं से अलग होने के कारण इसकी भाषिक संरचना और रूपात्मक गठन भिन्न होने को बाध्य है। डॉ. गोविन्द चातक ने नाट्यभाषा में प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुष को महत्वपूर्ण माना। वक्ता के रूप में पात्र अपने को 'मैं' रूप में प्रकट करता है तो नाट्यभाषा सफल होगा। नाट्यभाषा में संवाद का प्रमुख स्थान है। संवाद संबोधक एवं संबोध्य पर निर्भर करता है। सामान्य बातचीत में एक संदेश होता है, उसीतरह नाट्यभाषा में भी संबोधक और

संबोध्य के संवाद में एक संदेश होता है। उस संदेश दोनों आपस में ग्रहण करते हैं। इस प्रक्रिया में संबोधक संबोध्य और संबोध्य संबोधक बन जाते हैं। उस संदेश के लिए एक संदर्भ, संहिता, शारीरिक, उपस्थिति, मनोवैज्ञानिक स्थिति आदि तत्त्व आवश्यक है। नाट्‌यभाषा संबोधक एवं संबोध्य के उद्दीपन एवं अनुक्रिया पर आधारित होती है। "उद्दीपक दो रूप में अनुक्रिया पैदा करता है- कार्य रूप में और भाषिक अनुक्रिया के रूप में। एक पात्र की भाषिक अनुक्रिया दूसरे के लिए उद्दीपक का कार्य करती है और एक का उद्दीपन दूसरे में भाषिक कार्य को उत्पन्न करता है। ब्लूमफील्ड ने इस प्रक्रिया को तीन अंगों में बाँटा है- 1. भाषण- क्रिया से पूर्व घटित क्रियात्मक घटना, 2. भाषण क्रिया और 3. भाषण क्रिया के बाद घटित क्रियात्मक घटना। इस प्रकार भाषण क्रिया उद्दीपन और अनुक्रिया के बीच में अवस्थित है।"[20]

भाषा एक वैयक्तिक वस्तु होने के कारण नाटककार के व्यक्तित्व एवं अनुभव जगत का प्रभाव निश्चय ही उनकी रचना में प्रतिफलित होता है। भाषा लेखक के व्यक्तित्व से इतनी जुड़ी हुई होती है कि वह लेखक के अनुभव को वाणी देती है। लेखक की अनुभूति, संवेदना और अभिव्यक्ति की क्षमताएँ उनकी भाषिक संरचना को रूप देती है। अन्य विधाओं की तरह नाटक की भाषा मात्र नाटककार की भाषा नहीं, वह

नाट्य स्थिति के बीच उपस्थित पात्रों की भी भाषा है। इसलिए वह अप्रत्यक्ष रूप में लेखक के अनुभव और व्यक्तित्व का परिचय देती है। लेकिन यह नाटक के सर्जनात्मक उपादानों से अलग नहीं। डॉ. गोविन्द चातक ने नाट्यभाषा को वयः प्राप्त कन्या से उपमा की है। जिसे ससुराल की ज़िंदगी जीने के लिए पिता छोड़ देते हैं।

1.4.2.1 बोलचाल की भाषा

नाटक में दृश्य भाषा के साथ-साथ लिखित भाषा की भी प्रमुखता है। लिखित रूप में संरचनात्मक एवं शैलीय प्रयोग समाहित है। जनसामान्य के प्रयोग में आनेवाली बोली या वाक् में कई अभिव्यक्तिपरक तत्व समाहित हैं। लिखित भाषा में यह तत्त्व खोये के समान है। एक अच्छे नाटककार इन तत्त्वों को भी अपनी लिखित भाषा में समाविष्ट करते हैं।

अर्थक्षमता के लिए बोलचाल की भाषा को सामान्य स्तर से ऊपर उठाना पड़ेगा। सृजनात्मक लक्ष्यों के कारण नाट्यभाषा में जिस मानसिक स्थितियों और अभिव्यक्तियों का समावेश हो जाता है, इसको बोलचाल की भाषा में कहीं स्थान नहीं। नाट्यभाषा को जीवन्त बनाने के लिए नाटक में हमारे दैनंदिन जीवन में प्रयोग में आनेवाली भाषा का भी प्रयोग होता है। नाट्यभाषा अभिनय के लिए लिखी जाती है, इसलिए

इसमें बोलचाल की भाषा की विशिष्टताएँ भी होना अनिवार्य है। वाक् की मौखिक विशेषताओं एवं सृजनात्मक भाषा की अर्थक्षमताओं का इस्तेमाल करें तो नाट्यभाषा सफल होगा। बोली जानेवाली भाषा में ऐसी विशेषताएँ होती हैं कि इसमें अर्थ सिर्फ शब्दों पर निहित नहीं, वाणी की गति, बलाघात, श्वास क्रिया और लय आदि पर निर्भर है। यही है नाट्यभाषा की शक्ति। वास्तव में नाट्यभाषा आन्दरिक एवं बाह्य क्रियाओं को परस्पर जोड़ती है।

1.4.2.2 काव्यात्मकता

नाट्यभाषा के संदर्भ में कुछ लोग नाट्यभाषा के 'आंतरिक काव्य' को महत्व देते हैं। नाटक में दो तरह की काव्यात्मकता है- एक वाक् की क्षमताओं के आधार पर दूसरा सर्जनात्मक क्षमताओं के आधार पर। "वाक् की क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए रंगमंच के काव्य की बात कही जाती है, जिसका आधार अभिनय को माना जाता है। सर्जनात्मक क्षमताओं के आधार पर नाटक के कवित्व की बात की जाती है जो भाषा पर आधारित है।"[21] नाटक में काव्य का अर्थ है अपने भावों, विचारों और संवेदनाओं की सघनता एवं गहराई नाटक के अनुरूप हो। इसका मतलब यह नहीं कि नाट्यभाषा काव्यभाषा ही है। काव्य का प्रयोग नाटक में उसकी आवश्यकता पर निर्भर है। काव्यात्मक भाषा का

अर्थ-बोझिल होना या उसमें संस्कृत निष्ठ शब्दों के प्रयोग करके उसको बोझिल बनाना नहीं है।

1.4.3 रंगमंच

नाट्यभाषा का एक अनिवार्य घटक है रंगमंचीयता। शब्द के साथ-साथ रंगमंच के सभी तत्त्वों को समाविष्ट करके नाट्यभाषा अपने रूप को सार्थक बनाती है। नाटक और रंगमंच की शक्ति प्रेक्षक है। प्रेक्षक की अनुक्रिया रंगमंच को जीवंतता एवं यथार्थता प्रदान करती है। हमारे सामान्य जीवन में भी भाषा दृश्य के साथ जुड़ी हुई होती है। नाट्यभाषा में भी उसी तरह ही है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भाषेतर माध्यमों को किनेस्किस (Kinesics), पैरालिंग्विस्टिक्स (Paralinguistics) तथा प्रोक्सेमिक्स (Proxemics) आदि विज्ञानों के ज़रिए व्यक्त किया है। "स्थूल शारीरिक क्रियाओं में भी भाषिक प्रतिमान आरोपित करने के प्रयास हुए हैं जिन्हें किनेस्किस (Kinesics) की संज्ञा दी गई है। इसके साथ पैरालिंग्विस्टिक्स (Paralinguistics) तथा प्रोक्सेमिक्स (Proxemics) जैसे विज्ञानों का भी विकास हुआ है। 'किनेस्किस' शरीर और उसकी गतियों का अध्ययन करता है और उसके समर्थकों का कहना है कि बोली जानेवाली भाषा के समान ही शरीर भाषा में स्वनिम और रूपिम होते हैं जो बृहत्तर खंडों से

मिलकर अभिव्यक्ति करते हैं। इन लोगों का यह भी विचार है कि मनुष्य का व्यवहार भाषा की तरह ही अर्जित की जा सकती हैं और उनका भी अपना व्याकरण होता है। पैरालिंग्विस्टिक्स भाषेतर और भाषिक माध्यमों के साहचर्य का विवेचन करने में जुटा हुआ है जो नाट्यभाषा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण का जा सकता है। प्रोक्सेमिक्स भी एक तरह से मानव के भाषेतर व्यवहार का ही अध्ययन करता है, जिसका मुख्य विषय यह है कि वह खाली स्थान (Space) का कैसे प्रयोग करता है।"[22]

1.4.3.1 शरीर की भाषा

शरीर की अपनी एक भाषा होती है। शरीर की भाषा पर विचार करें तो हम भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित आंगिक अभिनय तक पहूँच सकते हैं। "भरतमुनि ने करण, अंगहार, हस्त, शिर, नेत्र आदि की अनेक मुद्राएँ, भंगिमाएँ दी हैं जो शरीर के लोच, शारीरिक अभिव्यक्ति, अभिनेता की कल्पना-शक्ति, उसका अपना व्यक्तित्व स्थापित करती है।"[23] उन्होंने सात्विक एवं वाचिक अभिनय का विश्लेषण अभिनेता द्वारा किया है। क्योंकि अभिनेता का शरीर भावाभिव्यक्ति की खान है।

अभिनेता के शरीर का अंग संचालन, उसकी भृकुटि, आँख, होंठ और उनके शरीर की हरकतों से उत्पन्न चेष्टाएँ, उसका वाक्-वैशिष्ट्य, उसका मंच में प्रवेश और प्रस्थान और मंच पर खड़ा होना ये सब नाटक

को संप्रेषित करने का सशक्त रूप हैं। इसको बाद में मोहन राकेश ने 'हरकतों की भाषा' कहा। शरीर की हरकतों द्वारा अभिनेता कभी-कभी बहते नदी, हिलते-डुलते वृक्ष एवं चट्टान भी बन सकता है। आज का रंगमंच शरीर की भाषा की तलाश में है।

अभिनेता की मानसिक और शारीरिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न सौन्दर्य की एक सर्जनात्मक भाषा थी। वह 'मनोशारीरिक रंगमंच' नाम से जानी जाती है। शरीर द्वारा मंच पर केवल नाटककार के शब्दों का अनुवाद नहीं, बल्कि शब्देतर नाटकीय अनुभवों का सृजन भी कर सकता है। उदयशंकर ने शरीर की क्षमता पर बल देकर कहा कि "वह देश-काल के अनुसार कितने ही 'दृश्य-रूप' बनाने की अद्भुत क्षमता रखता है, इसकेलिए वह मन में जागृति, शरीर का अनुशासन, एकाग्रता, स्फूर्ति, ऑब्जर्वेशन, कल्पना, आशु रचना और सर्जनात्मक शक्ति के विकास को आवश्यक मानते थे।"[24]

1.4.3.2 लय

सभी कलाओं के लिए एक आवश्यक तत्त्व है लय। मूर्तिकला जैसे अचंचल, स्थूल और स्थिर रूपों में भी लय की अनुभूति कर सकती है। नाट्यभाषा में ज़टिल एवं सूक्ष्म रूप में लय का विधान होता है। "नाटक की भाषा कई स्तर पर सक्रिय होती है इसीलिए उसकी लय भी

तीन स्तरों पर प्रमुखतः कार्य करती है-बनती है, बदलती है, सघन होती है। एक नाटककार की भाषा में, दूसरे निर्देशक की भाषा में, तीसरे अभिनेता की भाषा में।"[25]

हरेक व्यक्ति स्वभाव से अलग होता है। उसकी बोलने की रीति, चाल-चलन सब अलग होते हैं। उसी तरह प्रत्येक के मन में एक आंतरिक लय होता है। नाटककार अपने अनुभवों की झलक से चरित्र का निर्माण करता है, जिनको अपना लय होता है। चरित्र के आंतरिक लय को अभिनेता समझ पाता है तो उस चरित्र सफल होगा। अभिनेता, जीवन का लय, मानवीय लय और चरित्र से जुड़ा होना अनिवार्य है। अभिनेता के शरीर और शब्द दोनों से लय उत्पन्न कर सकता है। हबीब तनवीर के अनुसार- "भाषा, कल्चर और अभिनय वगैरह का आपस में बड़ा गहरा रिश्ता है। हर भाषा की अपनी लय होती है और उसका असर उस भाषा के बोलनेवाले के मूवमेंट्स पर पड़ता है। अलग-अलग के उठने-बैठने का तरीका अलग होता है, बात करने, खाने-पीने की आदतें और तरीके अलग होते हैं। अभिनय करने चलो तो सब जानना ज़रूरी है। सबकी लय समझनी होती है। अभिनेता को नाटक में डांस न भी करना हो तो लय से चलना, खड़े होना, मूक अभिनय करना, मुद्रा

बनाना, बोलना, मुडना आदि उसके लिए ज़रूरी है। क्रिएशन का रिश्ता मातृभाषा से, संस्कृति से है।"[26]

1.4.3.3 गति

गति नाटक में भाषा का काम करती है। अभिनेता भावों की अभिव्यक्ति केलिए गतियों का भी सहारा लेता है। नाट्य और गति में अटूट संबन्ध है। नाट्यशास्त्र के बारहवें अध्याय में भरतमुनि गति से संबन्धित विस्तृत विवेचन किया है। गति की कलात्मकता एवं काव्यात्मकता को उन्होंने 'चारी' माना है। पात्रों के अभिनय और प्रवेश-प्रस्थान में भी गति है। गति संचार के लिए नाट्य में जटिल, सूक्ष्म एवं आंतरिक ढंग से सघन बुनावट की ज़रूरत होती है। नाटक की शैली के अनुसार गति का संचालन होता है। कभी-कभार नाटक में शब्दों के स्थान पर गति काम में आती है। अभिनेता की क्षमता एवं निर्देशक की कुशलता के अनुसार गति का प्रयोग होता है।

अपनी सीमाओं और संभावनाओं एवं नाटक और प्रेक्षक को ध्यान में रखकर एक निपुण अभिनेता सार्थक ढंग से गति का प्रयोग करता है। मंच पर बेकार से चलते-फिरते रहना गति की कोटी में नहीं आती। युद्ध, आग, भूकंप और आक्रमण आदि सब साकार होने में गतियों की आवश्यकता है। गति प्रस्तुति की समग्रता पर निर्भर करती है।

अभिनय में गति की आवश्यकता पर विशेष बल देकर डॉ.रघुवंश का कथन है कि- "उससे और स्वराघातों से भावात्मक अभिनय के स्वर-लय के संतुलन की रक्षा की जाती है। गति दर्शकों के ध्यान को पारिभाषित करती है, उन्हें आनंद देती है, जिज्ञासु बनाती है और कौतुक बढ़ाती है। गति पात्र को, उसके व्यक्तित्व को स्पष्ट करती है।"[27] नाटककार शब्दों से करनेवाले सृजन निर्देशक गति के माध्यम से करता है। गिरीश रस्तोगी ने गति को नाट्य तत्व के रूप में नहीं माना, बल्कि उन्होंने उसे समग्र अभिव्यक्ति और अनुभूति का आधार माना है।

1.4.3.4 वेशभूषा और रूप सज्जा

रंगभाषा का एक अनिवार्य अंग है वेशभूषा और रूप सज्जा। इसमें अभिनेता का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसका सीधा संबन्ध अभिनेता से है। इसके साथ-साथ वह जिस चरित्र का निर्माण करना चाहता है, उस चरित्र से भी और अभिनेता के शरीर से भी इसका घनिष्ठ संबन्ध है। एक व्यक्ति वेशभूषा द्वारा भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व स्वीकार कर सकता है। अभिनेता मंच पर किस चरित्र की सृष्टि करना चाहता है, वेशभूषा से अभिनेता उस चरित्र के शरीर, मन, स्वभाव, बुद्धि आदि के निकट पहूँचता है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अभिनय के चार अंग

बताया है। इसमें आहार्य अभिनय के अंतर्गत वेशभूषा, अलंकरण, आभूषण, मुखौटे, रंगों के प्रयोग आदि आते हैं।

वेशभूषा नाटक में भाषा का काम करती है। हमें देशकाल की जानकारी देने के लिए यह सक्षम है। वेशभूषा सिर्फ अलंकरण नहीं है, बल्कि वह चरित्र के व्यक्तित्व का द्योतक भी है। इसके साथ-साथ कथानक को आगे-बढ़ाने में सहायता देती है। एक भिखारी को हम उसकी वेशभूषा के माध्यम से पहचानते हैं। आज के रंगकर्मियों ने रूढ़ीबद्ध वेशभूषा को दर्शकों की क्लपनाशक्ति में बाधक माना है। "वेशभूषा का डिज़ाइन, उसके रंग, रूप, उसके सामंजस्य और विरोधाभास सब नाटक की प्रकृति, परिवेश, अभिनय-पद्धति, चरित्रों, दृश्यबन्ध और रंगोपकरणों से भी प्रकाश योजना और संगीत से भी जुड़े हैं। इसीलिए रंगकला को सामंजस्य की कला कहा गया है।"[28]

वेशभूषा की तरह नाटक में रूप सज्जा का अपना महत्व है। यह भी नाटक में भाषा का काम करती है। चरित्र के अनुरूप अभिनेता अपने रूप बदलने को रूप-सज्जा कहती है। रूप सज्जा में पात्रों की आयु एवं विशेषता, देशकाल, इतिहास, लोक, यथार्थ, पात्रों की सामाजिक स्थिति, उसकी मानसिकता की भी पहचान आदि बातों पर ध्यान देना चाहिए। शैलीबद्ध प्रस्तुतियों की रूप सज्जा उसी से निर्धारित होती है। नाटक में

किसी एक संस्कृति, उत्सव आदि की रचना वेशभूषा और रूप सज्जा द्वारा संभव है।

1.4.3.5 दृश्य-विधान

दृश्यबन्ध होना नाटक के लिए अनिवार्य है। कथावस्तु को विकास देने के लिए और नाटक में अभिनय को दिशा प्रदान करने के लिए दृश्यबन्ध का महत्वपूर्ण स्थान है। रंगमंच में प्रयुक्त उपकरण एवं दृश्यबन्ध को एक भाषा के रूप में देखने का प्रयास यथार्थवादी रंगमंच ने किया। दृश्यबन्ध नाटक में अर्थाभिव्यक्ति का माध्यम है। नाटक में स्पेस से संबन्धित समस्या भी है। दृश्यबन्ध और अभिनेता दोनों के बीच अटूट संबन्ध है। दृश्यबन्ध का बड़ापन और दृश्यबन्ध में स्पेस की कमी आदि अभिनय में बाधा डालती है। मंच पर अभिनेता के महत्व को दिखाने के लिए दृश्य गौण करना आवश्यक है। अभिनेता को कम महत्व देने के लिए दृश्य को अधिक विस्तार देना चाहिए। आज के रंगमंच इन सभी समस्याओं का हल है। दृश्य अमूर्त है तो वहाँ अभिनय और संगीत द्वारा दृश्य की संरचना करना आवश्यक है। रंगोपकरण विहीन शैली का प्रयोग भी आजकल हो रहा है। रंगशिल्प का प्रमुख तत्त्व है दृश्यबन्ध। इसके अन्दर दृश्य-सज्जा आती है। "रीताराम चतुर्वेदी ने तथ्यवादी और प्रभाववादी दृश्य-सज्जा बताई है। पहली में दृश्य का

वास्तविक रूप है, दूसरे में उसका इच्छित प्रभाव इसलिए दृश्य-रचना मात्र तकनीकी ज्ञान नहीं है, कल्पनाशील, समझदारी, सूझ-बूझ भरा सृजन है। हमारे लोकमंच और संस्कृत मंच में दृश्य का रूप दिखाना नहीं, नाट्यार्थ और सौन्दर्यानुभव दोनों अनुमानाश्रित है।"[29]

1.4.3.6 प्रकाश व्यवस्था

रंगभाषा के रूप में महत्वपूर्ण है प्रकाश व्यवस्था। प्रकाश योजना रंगमंच का तकनीकी पक्ष है। यह तकनीक भाषा के रूप में दर्शकों को अर्थाभिव्यक्ति कर देती है। प्रकाश संयोजन रंगमंच को एक जीवंत रूप प्रदान करता है। प्रकाश योजना को मंच की रचनाधर्मिता और कलात्मकता को ध्यान में रखकर ही की जाती है। प्रकाश द्वारा अभिनय, दृश्य और दृश्यबन्ध साकार होते हैं। प्रकाश द्वारा नाटक में संघर्ष को भी उभारा जा सकता है। गिरीश रस्तोगी ने प्रकाश योजना की विकास यात्रा के बारे में कहा- "रंगदीपन पर भरतमुनि भी लिखते हैं कि 'कुंभ' के फूट जाने पर नाट्याचार्य प्रयत्नपूर्वक प्रकाशित दीपक द्वारा संपूर्ण रंगस्थल को प्रदीप्त करें एवं शब्द और ध्वनि की अतिशयता का उपयोग कर हुंकार करते हुए एवं दौड़ते हुए इस दीपक द्वारा पूरे रंगमंच को प्रकाशित करें। हमारी लोक परंपरा में भी मशाल रंगस्थल को प्रकाशित करने का आधार थी इससे एक अद्भुत वातावरण बनता था। बाद में गैस के हंडे आए

और फिर बिजली। युनानी रंगशालाओं में भी रंगदीपन प्रचलित नहीं था। मध्यकाल में वहाँ मोमबत्तियों द्वारा प्रकाश दिया गया। इस दिशा में यूरोपीय रंगमंच ने ही प्रकाश के सार्थक कलात्मक प्रयोगों में बड़ी तेज़ी से विकास किया। प्रकाश का संबन्ध 'एकरूप स्थिति' से नहीं रहा, भाव और स्थिति परिवर्तन से जुड़कर वह एक सम्मोहक प्रभाव की सृष्टि करने लगा-पर जीवन की वास्तविकता से, स्वाभाविकता से उसका संबन्ध यथार्थवादी रंगमंच ने पैदा किया। यूरोप ने प्रकाश के बहुत अधिक काव्यात्मक और अर्थपूर्ण प्रयोग किये। प्रकाश-प्रयोगों में यह एक क्रांति थी।"[30]

प्रकाश के प्रभावपूर्ण संयोजन से, उसकी तीव्रता से, उसकी काट से पात्रों के मानसिक संघर्ष तथा उसकी मनःस्थितियों को शब्दों से ज़्यादा प्रभावपूर्ण ढ़ंग से व्यक्त कर सकता है। दृश्य की जटिलता को भी प्रकाश द्वारा हल कर सकता है, और नाटक में मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने में सहायता देती है।

1.4.3.7 ध्वनि

रंगभाषा में ध्वनि का भी अपना महत्व है। नाटक में कई तरह की ध्वनियाँ होती हैं, जैसे पशु-पक्षियों की, किसी पदार्थ की, वाद्यों की, तथा अभिनेताओं द्वारा दी गई ध्वनि। कभी-कभी अंधकारमय खामोशी

को तोड़नेवाली चीत्कार भी बहुत अधिक प्रभाव डालती है। साथ-साथ अर्थाभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाने में समूह-ध्वनियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकाश की तरह ध्वनियों के माध्यम से भी दर्शक वर्ग नाटक के पूरे परिवेश एवं पात्रों की मनःस्थिति को पहचानते हैं। कभी-कभी ध्वनि शब्दों से ज़्यादा प्रभाव डालती है। ध्वनि प्रभाव से दर्शकों में भावों का संचारण होता है। ध्वनि प्रभाव द्वारा अनदेखे वस्तुओं को भी हम देख सकते हैं। तालाब में पत्थर फेंकने की ध्वनि हमें तालाब की प्रतीति देती है। नाटक में भावों को उभारने के लिए भी ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। संघर्ष भी ध्वनियों द्वारा निर्मित कर सकता है।

1.4.3.8 रंगोपकरण

रंगभाषा की दृष्टि से देखें तो सभी रंगोपकरण रंगभाषा के अंतर्गत आते हैं। भरतमुनि ने रंगोपकरण को आहार्य अभिनय के अंतर्गत समाहित किया। सभी चीज़ों को उपकरण के रूप में नाटक में नहीं ला सकता। इसलिए वहाँ प्रतीकात्मकता एवं सांकेतिकता का प्रयोग किया जाता है। मुखौटा, मुकुट आदि का प्रयोग अभिनेता की सृजन क्षमता बढ़ाने में सहायक होते हैं। मंच पर किस प्रकार उपकरणों को प्रयोग करना चाहिए, यह निर्देशक और अभिनेता की कल्पनाशक्ति पर निर्भर करता है। मानवीय संबन्ध एवं परिवेश को निर्मित करने के लिए

रंगोपकरण का प्रयोग किया जाता है। यथार्थ का भ्रम पैदा करने के लिए रंगोपकरण बड़ी सहायता देती है। इस अवसर पर अभिनेता को महत्व देना चाहिए क्योंकि वह स्वयं अपने को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करता है। रंगोपकरण में मुखौटे का महत्वपूर्ण स्थान है।

1.4.3.9 आकस्मिकता

कभी-कभी रंगमंच पर अनजाने में होनेवाली बातें भी रंगभाषा को रोचक बनाता है। इसलिए आकस्मिकता को भी रंगभाषा के रूप में ले सकता है। नाटक प्रस्तुतीकरण के समय कुछ घटनाएँ अनजाने में घटित होती हैं। लेकिन इसका नाटक से कोई संबन्ध नहीं होगा। फिर भी एक अच्छे अभिनेता उसे नाटक का हिस्सा बनाता है। जैसेः-रोल भूल जाना, हाथों से कुछ नीचे गिरना, पात्रों के बेवक्त में प्रवेश-प्रस्थान आदि कई बातें आकस्मिकता पैदा करती हैं। गिरीश रस्तोगी ने रंगभाषा को जीवित किस्सों का संसार कहा।

1.4.3.10 रंग-संगीत

कुछ रंगकर्मियों ने रंग संगीत को रंगभाषा के रूप में मान लिया है, लेकिन कुछ इसके विरोधी थे। रंग-संगीत भी नाटक में भावाभिव्यक्ति का माध्यम है। कभी-कभी नाटक की संघर्षपूर्ण या विवादपूर्ण अवस्था

को जितना संगीत द्वारा अभिव्यक्त कर सकता है, उतना शब्दों से नहीं। नाटक के कथानक को आगे बढ़ाने में रंग संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। रंग-संगीत को नाटक की भाषा के रूप में मानते हुए ब.व. कारन्त ने कहा है- "रंग-संगीत का नाटक से अलग हटकर कोई महत्व नहीं है। मैं संगीत का नहीं 'बेसिकली' नाटक का हूँ, संगीत मेरे लिए नाटकों में भाषा का काम करता है। इसीलिए मैं उसे 'एप्लायड म्यूज़िक' कहता हूँ जो नाटक से स्वतंत्र नहीं है।"[31] रंग-संगीत द्वारा परिवेश, स्थिति, संदर्भ और पात्रों की मानसिकता आदि को हम पहचान कर सकते हैं।

रंग संगीत को अपना एक अलग अस्तित्व है। शास्त्रीय संगीत से इनका कोई संबन्ध नहीं है। अलग-अलग प्रकार के रंग-संगीत होते हैं। कुछ नाटक ऐसे होते हैं कि हरेक दृश्य का आरंभ संगीत के माध्यम से होता है। कारन्तजी ने रंग संगीत को आरंभ संगीत, फिलर म्यूज़िक, एक्शन म्यूज़िक, नैरेटीव म्यूज़िक, मूड म्यूज़िक आदि रूपों में विभाजित किया। उन्होंने बेसुरेपन को भी नाटक में संगीत कहा। उन्होंने शब्दों की ध्वनि एवं लय के अंतर्निहित संगीत को भी नाटक में संगीत के रूप में देखा। प्रकाश-योजना की तरह संगीत भी नाटक में देश-काल और वातावरण की जानकारी देने में सहायक होता है।

1.4.3.11 प्रतीक और बिम्ब

आज के नाटककार ऐसी एक सशक्त भाषा की तलाश में, जो मंच से अधिक जुड़ी हुई हो और शब्दों से ज़्यादा प्रभावशाली हो। नाटक में प्रतीक एवं बिम्ब द्वारा ऐसी प्रत्यक्ष एवं जीवन्त भाषा का सृजन कर सकता है। नाटक में स्थिति और वातावरण कभी-कभी शब्दों से ज़्यादा हमें प्रभावित करते हैं। रंगमंच में इसी स्थिति और वातावरण का सृजन प्रतीक एवं बिम्ब के माध्यम से भी संभव है। वर्तमान सामाजिक स्थिति को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करने के लिए साहित्यकार प्रतीकों का सहारा लेता है। प्रतीक प्रेक्षक की कल्पना जगत को जागृत करता है। नाटक में भाषिक तथा भाषेतर प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। भाषेतर प्रतीक नाटक में अर्थ को और भी प्रभावशाली ढंग से प्रकट करता है।

उसी तरह बिम्बों का भी अपना महत्व है। भाव एवं अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य में बिम्बों का प्रयोग किया जाता है। किसी वस्तु के प्रति सुनते समय हमारे मस्तिष्क पर जो चित्र उभरता है, वह है बिम्ब का सीमित अर्थ। संवेदनात्मक जगत का सृजन करने में बिम्ब का विशेष स्थान है। नाटक में सूक्ष्मतम अर्थ को भी बिम्ब द्वारा अभिव्यक्त कर सकता है। आज के नाटकों में भौतिक वस्तुओं में भी बिम्बात्मकता पायी जाती है। अर्थ की दृष्टि से इसका स्थान सबसे ऊपर

है। मंच पर दृश्य बिम्ब की रचना करने में शब्द, गतियाँ, संगीत, वाक्-संयोजन, नृत्य, ध्वनियाँ आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भाषा की दृष्टि से बिम्ब और प्रतीक निर्माण के लिए सर्जनात्मक भाषा की ज़रूरत होती है। नाटक की संवाद योजना एवं क्रिया-कलापों का महत्वपूर्ण अंग हैं प्रतीक और बिम्ब। प्रतीक एवं बिम्ब द्वारा शब्दों की बाढ़ को रोक सकता है, और दोनों नाट्यभाषा को गतिशील बनाते हैं।

1.4.3.12 संवाद एवं अभिनय

संवाद नाटक का शरीर है। नाटक में भावाभिव्यंजना के लिए, चरित्र-चित्रण के लिए, कथानक की गति निर्णय के लिए, संघर्ष एवं घटनाओं की अभिव्यक्ति के लिए नाटककार संवाद का सहारा लेता है। संवाद प्रमुखतः संबोधक-संबोध्य पर निर्भर होने के कारण संवाद का स्वरूप उनके व्यक्तित्व, रुचि एवं उनकी प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। अभिनय और संवाद दोनों नाटक का प्राण हैं। मात्र आंगिक अभिनय से काम नहीं होगा, इसके साथ वाचिक अभिनय भी जुडे तो अभिनय अपने में संपूर्ण होगा। उदाहरण केलिए नाटक में एक क्रूद्ध व्यक्ति अपने हाथ मरोड़कर, मुख और आँखें लाल कर, नाक-भौंह सिकोड़कर हमारे सामने खडे तो, हमें मालूम होगा कि वह क्रोध में है। लेकिन उस समय उस आदमी के अंदर जो चिन्ता या विचार है, वह उसकी इस आंगिक चेष्टाओं

द्वारा पूर्ण रूप से हमें पहचान न कर पायेगा। उन विचारों की अभिव्यक्ति भाषा से संभव है। इसका एकमात्र उपकरण संवाद ही है। अभिनय और संवाद के बीच अटूट संबन्ध है। कभी-कभी नाटक में आंगिक चेष्टाएँ संवाद का रूप धारण करती हैं। इसका मतलब यह नहीं कि संवाद में शब्दों का कम महत्व है। कभी-कभी क्रोध की अवस्था में अभिनेता को कुछ शब्द का उच्चारण खुले ढ़ंग से करना पड़ेगा, उस स्थिति में अभिनय में कुछ काम करके दिखाना पड़ेगा।

1.4.4 नाट्यभाषा के सिद्धान्त

नाट्यभाषा के सैद्धान्तिक पक्ष की चर्चा की जाए तो आधार ग्रन्थ की तरह नाट्यशास्त्र एवं अरस्तु के काव्यशास्त्र पर विचार करना आवश्यक है।

1.4.4.1 नाट्यभाषा : भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण

नाट्यभाषा संबन्धी पाश्चात्य एवं भारतीय दृष्टिकोण में समानताएँ एवं असमानताएँ मिलती हैं। लेकिन उद्देश्य की दृष्टि से दोनों में कोई अंतर नहीं।

1.4.4.1.1 भारतीय दृष्टिकोण : भरतमुनि के विचार

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाट्यभाषा पर विचार करते समय अभिनय को मूल में रखा। संवाद नाटक का अभिन्न अंग है। भरतमुनि ने नाट्यभाषा के संदर्भ में संवाद का विस्तृत विवेचन किया है। भरतमुनि के अनुसार नाट्यभाषा ऐसी होनी चाहिए कि साधारण जनता को आसानी से समझ सकें और उसे यथार्थ की ओर ले चलें। इसलिए उन्होंने संवाद में बोलचाल की भाषा पर बल दिया। इसके साथ-साथ उन्होंने संवाद छोटे-छोटे और चुस्त होना अनिवार्य माना। उनके अनुसार पद्य भाषा भी नाटक के लिए अपेक्षित है। और उन्होंने नाटक मे गीतों के प्रयोग पर भी बल दिया। इसका कारण यह है कि गीतों द्वारा नाटक में रस का संक्रमण होता है। लेकिन जहाँ यह गीत नाट्यभाषा के सुगम गति में बाधा उत्पन्न करता है वहाँ इसका प्रयोग अपेक्षित नहीं है। नाटक में गीतों के प्रयोग द्वारा भाव एवं अर्थ को सशक्त ढ़ंग से अभिव्यक्त कर सकता है।

भरतमुनि के अनुसार नाटक में अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा और न्योन्यन्तरी भाषा आदि चार प्रकार की भाषाओं का प्रयोग होता है। इसमें वैदिक शब्द बहुल भाषा को अतिभाषा कहती है। श्रेष्ठजनों द्वारा प्रयुक्त भाषा है आर्यभाषा। पशुपक्षियों की बोली से उत्पन्न भाषा

न्योन्यन्तरी भाषा है। जातिभाषा के दो प्रकार हैं - संस्कृत पाठ्य तथा प्राकृत पाठ्य। उत्तम पात्रों के लिए संस्कृत पाठ्य तथा नारी और अधम पात्रों के लिए प्राकृत पाठ्य। भरतमुनि ने संदर्भानुसार इन दोनों की योजना सभी पात्रों में होने का बल दिया। उदाहरणार्थ किसी उत्तम पात्र नाटकांत में अधम पात्र बन जाने की स्थिति आते तो पहले की स्थिति में संस्कृत भाषा का तथा दूसरी स्थिति में प्राकृत भाषा का प्रयोग होना चाहिए। कुछ विशेष अवसर पर अधन पात्र भी संस्कृत भाषा का और उत्तम पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग भी करते हैं। अपने ज्ञान प्रदर्शन करने के लिए कुछ विशेष अवसर पर वेश्या पात्र भी संस्कृत भाषा का प्रयोग कर सकती है। उन्होंने जाति, गुण, रूप और परिवेश के अनुसार भिन्न-भिन्न भाषा का प्रयोग नाटक में होने को बल दिया।

प्राकृत भाषा को भरतमुनि ने मागधी, अवन्ती, प्राच्य, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीका, दाक्षिणात्या आदि सात भागों में विभाजित किया है। इसके साथ गौण स्थान रखनेवाली कुछ विभाषाएँ भी है- शाकारी, आभीरी, चाण्डाली, शाबरी, द्राविड़ी, आन्धी तथा वनचरों की अपनी जंगली भाषाएँ। "मागधी भाषा का प्रयोग राजा के अंतःपुर के रक्षक तथा सेवकों के लिए तथा विदूषक और उसके सदृश्य पात्रों की प्राच्य भाषा तथा धूर्त पात्रों की अवन्ती भाषा सुविधानुसार नायिका तथा उसकी सारी

सखियों की भाषा शौरसेनी हो सैनिकों, जुआरियों, नगर मुख्य आरक्षक की भाषा दाक्षिणात्या तथा भारत के उत्तर भाग के निवासी खसों की, अपनी देश भाषा वाह्लीकी होनी चाहिए।"[32] भरत ने मुख्य प्राकृत को कुछ विशिष्ट पात्रों के लिए और विभाषाओं को नीच जातियों के लिए उपयोगी माना। उन्होंने पात्रों को संबोधित करनेवाले शब्द पर भी विशेष ध्यान दिया है। उदाहरणार्थ महर्षी को 'भगवन' शब्द, ब्राह्मण को 'आर्य', शिक्षक है तो 'आचार्य' शब्द आदि।

नाट्यभाषा के संदर्भ में नाट्यशास्त्र में वृत्तियों के बारे में भी विस्तार से चर्चा की गई है। भरतमुनि ने वृत्तियों को नाट्यमातरः कहा। वृत्तियाँ चार प्रकार की हैं- भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी। नाटक में वृत्तियों द्वारा भाव एवं अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। उन्होंने वृत्तियों में भारती वृत्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। भारती वृत्ति का प्रयोग स्त्रियों के लिए वर्जित है। इसमें पुरुष पात्रों द्वारा संस्कृत पाठ का प्रयोग होता है। भरतों (नटों) द्वारा प्रयोग होने से इसका नाम भारती पड़ा। इसमें वाणी का कौशल प्रधान होता है। भारती वृत्ति के चार भेद हैं - प्ररोचना, आमुख, वीथी और प्रहसन। भारती और सात्वती वृत्ति के अलावा शेष दो वृत्तियों को अर्थवृत्तियाँ कहती हैं।

भरतमुनि ने नाट्यभाषा पर अलंकार और छन्द के प्रयोग पर बल दिया। उनके अनुसार अलंकार एवं छन्द के माध्यम से नाटक में भावों की अभिव्यक्ति होती है। देश-काल, वातावरण पर भी उन्होंने ध्यान दिया। जो पात्र जिस देश का होता है उन्हें उसी देश की भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है। क्योंकि इसके द्वारा प्रेक्षक वर्ग को देश-काल का बोध होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह विधित होता है कि नाट्यशास्त्र में भाषा संबन्धी जो विस्तृत विवेचन हुआ है, वह अन्यत्र नहीं।

1.4.4.1.2 पाश्चात्य दृष्टिकोण

नाट्यभाषा पर एक सुव्यवस्थित दृष्टिकोण भारत की तरह पश्चिम में भी है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में सबसे पहले अरस्तु ने नाट्यभाषा पर विचार किया। उन्होंने अपने 'काव्यशास्त्र' और 'राजनीति' में नाट्यभाषा संबन्धी अपना विचार प्रकट किया।

1.4.4.1.2.1 अरस्तु के विचार

काव्य में दो प्रकार के कार्यकलापों का अनुकरण होता है। एक तो सदाचारियों द्वारा सद्प्रवृत्तियों का अनुकरण दूसरा दुराचारियों द्वारा दुष्प्रवृत्तियों का। इसमें सदाचारियों के कार्य कलापों के अनुकरण से

महाकाव्य का जन्म एवं दुराचारियों के कार्यकलापों द्वारा व्यंग्य काव्य का जन्म हुआ। इन दोनों प्रकार के काव्य रचनाओं से त्रासदी एवं कामदी का जन्म हुआ। महाकाव्य के सभी गुणों को मानते हुए भी अरस्तु ने त्रासदी को ही श्रेष्ठतम काव्य रूप माना। उनके अनुसार नाटक के दो भेद है- त्रासदी और कामदी। अरस्तु ने त्रासदी को कामदी से ज़्यादा श्रेष्ठ माना है। त्रासदी का लक्ष्य दुख एवं दर्द की कहानी द्वारा पाठकों एवं प्रेक्षकों के मन में त्रस और करुणा की वृद्धि करना है। गंभीर कार्य-कलापों एवं गंभीर चरित्रों का विश्लेषण त्रासदी में होता है। इसलिए इसमें सृजनात्मक भाषा का प्रयोग आवश्यक है। उनके अनुसार कामदी में सर्जनात्मक भाषा अपेक्षित नहीं है। कामदी का लक्ष्य व्यंग्य है। "त्रासदी किसी गंभीर स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त व्यापार की अनुकृति का नाम है; जिसे भाषा में विभिन्न कलात्मक तरीकों से अलंकृत किया जाता है तथा जिसके (नाटक अथवा त्रासदी के) पृथक-पृथक हिस्सों में उस निश्चित कार्य-व्यापार के विविध प्रकार पाये जाते हैं; जिसका रूप वर्णनात्मक न होकर कार्यात्मक होता है; और जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का विरेचन किया जाता है।"[33]

अरस्तु ने गद्य भाषा और पद्य या छन्द की भाषा कहकर नाट्यभाषा को दो भागों में विभाजित किया। उनके अनुसार पद्य या

छन्द की भाषा का प्रयोग नाटक में होता है। इसका कारण यह है कि उन्होंने नाटक को काव्य-प्रकार के रूप में माना है। सामान्य पद्य से यह इसलिए अलग है कि नाटक में अभिनय गुण की प्रधानता है। अरस्तु ने कथानक को नाटक में प्रमुख माना। त्रासदी में मानव की नैतिक भावना को पुष्ट करनेवाली कथावस्तु को निर्मित करने के लिए सशक्त एवं गंभीर भाषा की अपेक्षा होती है। उन्होंने भाषा को नाटक का माध्यम कहा। अनुकरण का साधन भाषा ही है। प्रेक्षक या पाठक के मन में साधारणीकरण सहजभाषा द्वारा संभव है।

अरस्तु के अनुसार त्रासदी को अलंकृत करने केलिए गीत योजना आवश्यक है। उन्होंने नाट्यभाषा में पद्य और सामूहिक गीत को अनिवार्य माना। नाट्यभाषा को अधिक सशक्त बनाना एवं प्रेक्षक के मन में रागात्मक प्रभाव डालना, ये दोनों गीतों द्वारा संभव हैं। उन्होंने नाट्यभाषा में छन्द एवं अलंकार को आवश्यक नहीं माना। वर्ण, मात्रा, संयोजक शब्द, संज्ञा, क्रिया, विभक्ति या कारक, वाक्य अथवा पदोच्चय आदि भाषा वैज्ञानिक विवेचन को अरस्तु ने नाट्यभाषा के अंग के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने भाषा के संदर्भ में नवीन शब्दों के प्रयोग को महत्व दिया।

1.4.4.2 भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण : तुलना

नाट्यभाषा संबन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण में समानताएँ एवं असमानताएँ दृष्टिगत होती हैं।

1.4.4.2.1 समानताएँ

नाट्यभाषा के संदर्भ में भरतमुनि और अरस्तु में समानता दृष्टिगत होती है। भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित करुण रस एवं अरस्तु के त्रासद दोनों में समानता देख सकती है। दोनों ने नाटक में बोलचाल की भाषा को स्वीकार किया और दोनों ने नाटक में भावों के संचरण के लिए गीतों के प्रयोग पर बल दिया।

1.4.4.2.2 असमानताएँ

भरतमुनि ने नाट्यभाषा को अनेक वर्गों में बाँट कर उसके प्रयोग पर बल दिया। लेकिन अरस्तु भाषा की वर्गीयता पर ध्यान न देकर उन्होंने कथानक की वर्गीयता को महत्व दिया। अरस्तु के भाषिक नियम बंधे छोरवाले हैं, भरतमुनि के खुले छोरवाले हैं।[34] पाश्चात्य नाटकों में कथानक एवं चरित्र-चित्रण की प्रमुखता है तो, भारतीय नाटक में रस की प्रधानता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि भारतीय काव्यशास्त्र में चरित्र-चित्रण एवं कथावस्तु उपेक्षित थे। भरत ने नाट्यभाषा में छन्द के प्रयोग

पर बल दिया, लेकिन अरस्तु के अनुसार नाट्यभाषा में छन्द का प्रयोग अपेक्षित है। नाट्यभाषा में गीत के प्रयोग पर दोनों ने बल दिया। लेकिन अरस्तु ने सामूहिक गीत और भरतमुनि ने व्यक्तिगत गीत के प्रयोग पर बल दिया। नाटक के प्रति दोनों का दृष्टिकोण बिलकुल अलग है - अरस्तु का दृष्टिकोण वस्तुवादी है, भरत का भाववादी। वस्तुवादी में कथावस्तु से भाषा है, और भाववादी में रस के अंतर्गत ही भाषा है।

1.4.5 नाटक की संरचना और भाषा

सामान्य भाषा एवं साहित्यिक भाषा के बीच जो अंतर है, उस अंतर को स्पष्ट रूप में व्यक्त करना नाटक द्वारा संभव है। साहित्यिक भाषा की सभी विशेषताओं से ओतप्रोत होते हुए भी नाटक की भाषा साहित्य की अन्य सभी विधाओं से अलग है। नाटक जीवन का यथार्थ चित्रण है। नाटककार नाटक में जिस मानव जीवन का चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत करता है, उस मानव समाज के सभी क्रियाओं एवं अंतः संघर्षों के बीच जीनेवाला मानव होता है। उन्हीं अंतःसंघर्षों को नाटककार नाटक के भाषिक एवं रचनात्मक रूप के अंतर्गत समावेश करने का प्रयास करता है। पुराने नाटकों में घटना एवं घटना में निहित कुतूहलता, जिज्ञासा आदि की प्रधानता थी। आज के मानव जीवन में आए हुए

परिवर्तन के कारण उत्सुकता एवं जिज्ञासा का स्थान मानवीय संबन्धों की टकराहट ने लिया।

समकालीन नाटक एवं रंगमंच जीवन से अधिक जुड़े होने के कारण जीवन का हर क्षेत्र नाटक के लिए अछूता नहीं। समकालीन नाटककार भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति को प्रधानता दी। "इस काल का नाटककार समसामयिक परिवेश में भोगे हुए यथार्थ के स्तर के विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन की नाट्य-स्थितियों को आधार बनाता है।"[35] यथार्थवाद के आगमन के बाद नाटक के परंपरागत रूप में बदलाव आया। नाटक में अतिप्रकृतवाद, अभिव्यक्तिवाद, एब्सर्ड आदि का व्यापक प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप नाटक के कथानक और चरित्र से संबन्धित धारणाएँ एवं शिल्प पर भी बदलाव आया। इसके साथ-साथ नाटक की भाषा में भी परिवर्तन आया।

भाषा की व्यावहारिक रूप के बीच ही वास्तविक नाटक का जन्म होता है। इसकेलिए नाटक की स्थिति, घटना एवं चरित्र सहायता देती हैं। "किसी भी भाषिक घटना के तीन तत्त्व होते हैं : कथात्मक (Substantial), रूपात्मक (Formal) तथा स्थित्यात्मक (Situational)।"[36]

1.4.5.1 स्थिति

इनमें से स्थिति प्रमुख है। जो भाषा को रूप ग्रहण करने में सहायता देती है। स्थिति पात्र को एक विशेष तल की ओर ले जाती है। उसी के अनुसार भाषा विशेष रूप धारण करती है। स्थिति मात्र घटना में ही नहीं पात्र या व्यक्ति के संस्कार, पूर्वानुभव एवं सामाजिक संगठन में भी समाहित होती है। लेकिन नाटक में कोई तात्कालिक स्थिति होती है, उस स्थिति में पात्र किसी उक्ति को कहने केलिए बाध्य होता है। संदर्भ, संबोध्य, संबोधक एवं पूर्वानुभव आदि के अनुसार किसी विशेष स्थिति में पात्र विशेष उक्ति का प्रयोग करता है। "नाट्यभाषा और संवाद नाटककार की समझ के माध्यम से चरित्र के आंतरिक चुनाव पर भी अपना स्वरूप निर्धारित करते हैं।"[37] स्थिति में सिर्फ पात्र ही नहीं कथावस्तु, संदर्भ आदि समाहित होते हैं। स्थित्यात्मक अवयवों के साथ रूपात्मक अवयव मिलने से भाषा और संवाद की संरचना होती है।

1.4.5.2 संदर्भ

संदर्भ नाट्यभाषा का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो स्थिति और संवादीय संरचना को परस्पर ज़ोडता है। नाटक में दो पात्रों के बीच के वार्तालाप से उसकी कथावस्तु में निहित संदर्भ अपने को स्वयं निर्मित करता है। संबोधक एवं संबोध्य एक ही संदर्भ में है तो दोनों के बीच के

वार्तालाप का अर्थ दोनों परस्पर ग्रहण करते हैं। नाटक में अधूरे वाक्य को अर्थपूर्ण बनाने में संदर्भ का महत्वपूर्ण स्थान है। नाटक में बाह्य और आन्तरिक दोनों तरह के संदर्भ होते हैं। बाह्य संदर्भ के अंतर्गत देश और काल आते हैं। इसका संबन्ध दृश्यबन्ध से है। कभी-कभी देशकाल नाटक की संवेदना से मिलजुल कर नाटक की आंतरिकता का अंग बन जाता है। सामान्यभाषा और नाट्यभाषा के बीच का प्रमुख अंतर यह है कि सामान्यभाषा का संबन्ध वस्तु संदर्भ से है और नाट्यभाषा का संबन्ध व्यक्ति संदर्भ से है। "संदर्भ और स्थिति के परस्पर जुड़ते ही पात्र की पहचान शुरू होती है और उसके साथ ही भाषा और संवाद का एक विशिष्ट रूप भी उभरता है।"[38] नाटक में भावों को बढ़ाने की क्षमता ही स्थित्यात्मक एवं रूपात्मक अवयवों की सफलता को निर्धारित करती है। इसकेलिए संबन्ध-मूर्त-विधान की आवश्यकता है।

नाट्यभाषा की पात्रानुकूलता का स्वरूप निर्धारित करने के लिए देश, काल, शिक्षा, आयु, वर्ग, लिंग, रुचि, बोलने की शैली आदि बातों का प्रतिनिधित्व आवश्यक है। "आज पात्रानुकूल भाषा का दायरा सीमित होकर पात्रों के व्यक्तिगत संस्कारों, शब्द संयोजन, लय, गति और बलाघात के रूप में विविधता प्राप्त कर सका है।"[39] नाटक में पात्रों के परस्पर संबन्धों के कारण एक पात्र की भाषा दूसरे के लिए feedback

का काम करती है। इसी कारण भाषा गतिशील बन जाती है। नाटक में भाषा पात्र-व्यवहार का एक अंग बन जाती है। नाटक में भाषेतर माध्यमों का भी प्रधानता होती है। भाषिक तथा भाषेतर माध्यम पात्र को दूसरे पात्रों, स्थितियों, क्रियाओं आदि के साथ जोड़कर एक संपूर्ण मानवीय अनुभव प्रदान करते हैं। इसीतरह संदर्भों, स्थितियों, क्रियाओं, गतियों एवं वाणि से मंच के खाली स्थान को भरपूर कर एक समग्र नाट्य संसार की प्रतीति कराती है।

नाटक लिखते समय नाटककार के सामने भाषा के रूप में अनेक विकल्प आते हैं। लेकिन परिवेश, संदर्भ और सामाजिक मान्यताओं को ध्यान में रखकर नाटककार इनमें से एक को चुन लेता है। और अन्य विकल्पों का निर्धारण स्वयं इसके साथ होता है। आज पात्रानुकूल भाषा के रूप में अश्लील भाषा, गालियाँ एवं अपशब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। एक तरह से देखें तो ये सब परंपरा को तोड़ते हैं। सामाजिक यथार्थ के कारण नाट्यभाषा में वैविध्य होता है। आज के असाधारण स्थिति में जीनेवाले मानव की भाषिक अभिव्यक्ति सामान्य भाषा से संभव नहीं होगी। इसलिए नाट्यभाषा में प्रतीकों, अधूरेवाक्यों, पुनरावृत्तियों, अनगढ़ शब्दों, वाचिक अवरोध, उच्चारण विकृतियों, बिना व्याकरण के प्रयोगों को प्रधानता देकर भाषा को निर्मित करना नाटककारों के लिए साधारण

बात बन गयी है। पात्रानुकूल भाषा के लिए अनिवार्य है यथार्थ का भ्रम पैदा करना। भाषा का यथार्थ सिर्फ संवाद एवं चरित्र से नहीं, नाटक के पूरे ढाँचे पर निर्भर करता है।

नाटक में काव्यभाषा एवं तर्कभाषा दोनों का प्रयोग होता है। दोनों तरह की भाषा का अंतर 'संदेश' और संहिता पर आधारित है। नाटक की लेखन प्रक्रिया में नाटककार, पात्र एवं भाषा, ये तीनों को अलग करके देखा नहीं जा सकता। नाट्यभाषा को सार्थक बनाने के लिए समस्त भाषिक तत्वों एवं रंगीय अवधारणा होना अनिवार्य है। इन्हीं के बीच नाट्यभाषा अपने को रूपायित करती है तो सार्थक होगा।

1.4.6 नाटक की भाषिक संरचना

नाट्यभाषा की संरचना में प्रयोगों की संभावनाएँ अधिक होती हैं। क्योंकि वह वागव्यवहार के अधिक निकट है। बिना शब्दों के नाटक भी है, और निःशब्दता की स्थिति भी नाटक में होती है। उस समय में यह स्थिति ध्वनियों और शब्दों के आपसी संबन्ध पर निर्भर करती है। दृश्य की तरह प्रेक्षक की कल्पना शक्ति जागृत करने में शब्दों का भी अपनी भूमिका होती है। नाटक में नाटकीय शब्दों के माध्यम से दृश्य बिम्ब का उद्भव होता है। इसलिए मोहन राकेश ने दृश्य को शब्द की परिणति माना। बिम्बों के सृजन करनेवाले प्रतीकात्मक शब्द, मुख्य

शब्द, उद्दीपक शब्द आदि का प्रयोग नाटक में होता है। शब्दों को नाटकीय बनाना नाटककार की सबसे बड़ी समस्या है। नाटकीय शब्द क्रिया और संघर्ष से जोड़कर एक विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता है। जीवन की गति, तनाव, लय आदि को आत्मसात् करनेवाले शब्द का प्रयोग नाटक केलिए उचित है। उस शब्द में संवाद को नए अर्थतल देने की, जीवनानुभूति को समेटने की और रंगमंच के क्रिया-कलापों से जोड़ने की क्षमता होनी चाहिए।

नाटक में शब्द की बहुआयामिता के कारण वह अलग-अलग स्थितियों एवं संदर्भों में अलग-अलग अर्थ रखता है। यह शब्द के प्रयोग पर निर्भर करता है। नाटक में प्रयोग का अपना महत्व है। शब्द मूल रूप में वाक् ध्वनि है। "सघोष, अघोष, महाप्राण, अल्पप्राण, वर्तुल, अग्र, पश्च, दंत्य, ओष्ठ्य, नासिक्य आदि सभी ध्वनियों का अपना अर्थतात्त्विक प्रभाव होता है।"[40] शब्दों के सोद्देश्य चयन एवं प्रयोग नाट्यभाषा एवं संवाद के लिए अनिवार्य हैं। ये हमारे अनुभव, परिस्थिति, अस्तित्व, बौद्धिकता एवं शारीरिक चेष्टाओं से जुड़े होते हैं। नाट्य शब्दावली की शक्ति यह है कि दर्शक वर्ग संज्ञा और क्रिया को मंच पर एक साथ देखते हैं।

तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी शब्द नाटक में परिवेश के निर्माण में सहायता देती है। आज के नाटक में अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग पहले से भी ज़्यादा हम देख सकते हैं। फिर भी आधुनिक नाटकों में देशज शब्दों के प्रति आकर्षण बढ़ा है। नाटक में अन्य शब्दों से ज़्यादा देश, काल, व्यक्ति से संबन्धित शब्दों का प्रयोग होता है। नाटक एक आत्मकेन्द्रित विधा होने के कारण इसमें 'मैं' शब्द अधिक महत्वपूर्ण है। रंगमंच एवं दृश्यत्व पर हम इतना बल देने के बावजूद भी आज के कुछ नाटक दृश्य से ज़्यादा शब्द को भी प्रधानता देती है। इस संदर्भ में प्रतीकात्मक एवं बिम्बात्मक शब्द का महत्वपूर्ण स्थान है।

नाटक में अर्थ शब्दों से ज़्यादा वाक्य पर निर्भर करता है। इसका मतलब यह नहीं कि शब्दों का कम महत्व है। कभी-कभी नाटक में अनेकार्थक वाक्य का प्रयोग भी होता है। "वाक्यों को प्रकार्य की दृष्टि से देखें तो उन्हें इन वर्गों में बाँटा जा सकता है - अभिव्यक्तिपरक, निदेशपरक, संकेतपरक, काव्यपरक, तर्कपरक और संपर्कपरक। नाटक में अभिव्यक्तिपरक वाक्य वक्ता की भावात्मक स्थिति का द्योतन करते हैं। निदेशपरक वाक्यों में संबोधन प्रश्न और आज्ञामूलक भाव मुख्य होते हैं। काव्यपरक वाक्य अनुभूति की तीव्रता सघनता और शैलीगत विशिष्टताओं के परिचायक होते हैं। तर्कपरक वाक्य नाटक में खंडन-मंडन और वाद-

विवाद के लिए प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त नाटक की संवादीय योजना में ऐसे भी अनेक वाक्य होते हैं जो केवल श्रोता और वक्ता के बीच संपर्क साधने के लिए लिखे जाते हैं - कुशल-क्षेम पूछना, अभिवादन करना आदि इसके उदाहरण है।"[41]

नाट्यभाषा बोलचाल की भाषा के अधिक निकट होने के कारण उसका वाक्य विन्यास भी उसका निकट कहा जा सकता है। गोविन्द चातक ने नाट्यभाषा के वाक्य विन्यास को 'नाटकीय/थियेट्रिकल वाक्य विन्यास' कहा है। यह अभिनय पर निर्भर करता है। इसमें अर्थ की प्रधानता है। काव्य में छन्द का जो स्थान है वही स्थान नाटक में लय और कार्य का। इसलिए नाट्यभाषा में व्याकरण से अशुद्ध, अपूर्ण, अस्पष्ट वाक्य भी सार्थक होते हैं। नाट्यभाषा के वाक्यविन्यास में व्याकरण का कोई महत्व नहीं।

"प्रकार्यमूलक वाक्य नाट्यभाषा की वास्तविक आत्मा को प्रकट करते हैं। वक्तव्य, प्रश्न, व्याख्या, विस्मय, आज्ञा, अनुनय-विनय आदि प्रकार्य नाट्यभाषा में जीवन की सक्रियता, शक्ति और भावतत्त्व को उजागर करते हैं। घोषणात्मक वाक्य वक्तव्य को प्रस्तुत करता है, किन्तु जब वह चिंतन के क्षण से जुड़ा होता है तो नाटक में सूक्ति को जन्म देता है। सकारात्मक वाक्य का अपना बल होता है, किंतु कई नाटकीय

स्थितियों में उसकी तुलना में नकारात्मक वाक्य अधिक अर्थवान होता है। आज्ञासूचक वाक्य भी नाटक में क्रिया और उसकी प्रेरणा से अनुप्राणित होने के कारण कम प्रभावशाली नहीं होते। किंतु सबसे अधिक नाटकीयता संभवतः प्रश्नवाचक वाक्यों में होती है जो संबोधक की विशेष भाव-मुद्रा, मनःस्थिति, अभिरुचि, जिज्ञासा, आत्म-साक्षात्कार का भाव, भय, विस्मय आदि को व्यक्त करते हैं। इसके साथ वे ही स्थिति से जुड़कर नकार, विसंगति, चुनौती और समस्या का भी आभास देते हैं। कभी प्रश्न केवल प्रश्न के लिए होता है, वह उत्तर की अपेक्षा नहीं रखता अथवा उत्तर स्वयं प्रश्न करनेवाला ही दे देता है। कहीं प्रश्न पर-पीड़न या सिर्फ कोंचने के लिए भी हो सकता है। कुल-मिलाकर वाक्य की विभिन्न प्राश्निक मुद्राओं का अपना अर्थीय प्रभाव होता है।"[42]

नाटक की भाषिक संरचना पर ध्यान दें तो हमें मालूल होगा कि इसमें वाक्यविन्यास का महतवपूर्ण स्थान है। काव्यनाटक एवं गद्यनाटक दोनों के वाक्य विन्यास में अंतर अवश्य है। नाटक में वाक्यों के रूप विन्यास एवं आकार-प्रकार में वैविध्य होना स्वाभाविक है क्योंकि नाटक अपने में एक विविधतायुक्त व्यापक संसार को समेटते हैं। कभी-कभी नाटक में एक ही शब्द पूरे वाक्य का काम करता है, इसी तरह के 'शब्दवाक्य' को नाटक में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इसके साथ-साथ

खण्ड वाक्यों, अनुवर्ती वाक्यों और विभाजित वाक्यों का अपना अलग महत्व होता है। एक वाक्य के अनेक छोटे उपखण्डों को निश्चित शब्दों वाले वाक्य बनाना और इसके विपरीत अनेक छोटे वाक्यों को बड़े वाक्य की तरह संयुक्तीकरण का कार्य भी आज के नाटक में सामान्य बात बन गई है। पहले में विराम चिन्हों का और दूसरे में रिक्तिसूचक बिन्दुओं का प्रयोग किया जाता है।

आज के नाटककार संवाद और भाषा में समानान्तरता, आवृत्ति, विषमता, सादृश्य विधान जैसी तकनीकी युक्तियों का प्रयोग करता है। नाटक में वाक्य का एक क्रम होता है। नाटक में लय पैदा करने के लिए और नाटक की भावात्मकता में नाटकीय तनाव पैदा करने के लिए इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। नाटक में वक्रोक्ति, ध्वनि आदि कहनेवाले के लक्ष्य को सार्थक ढ़ंग से प्रकट करने के लिए सहायता देती है। इसका आधार स्वर शैली है।

नाट्यभाषा अभिनय को प्रधानता देने के कारण उसमें रंगीयतत्त्वों को अधिक प्रधानता दी जाती है। भाषिक संरचना में अर्थ पैदा करने में रंगीय तत्त्व का बड़ा हाथ है।

1.5 निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अन्य विधाओं की तरह नाटक एक साहित्यिक रचना होने के कारण इसे शाब्दिक कला की संज्ञा भी दी जाती है। क्योंकि साहित्य के लिए भाषा ज़रूरी है। इसके साथ-साथ नाटक एक दृश्य माध्यम होने के कारण इसमें भाषा के साथ-साथ भाषेतर माध्यमों का भी महत्व है। नाटक रंगमंच के लिए है, इसलिए नाटक की भाषा मानव जीवन से जुड़ी भाषा होना ज़रूरी है। इसको काव्यभाषा की बोझ से और सामान्य बोलचाल की भाषा की सरलता से बचना चाहिए। संप्रेषण की प्रमुखता होने के कारण इसमें दृश्य, अभिनय, संगीत, वेश-भूषा, गति, प्रकाश आदि मंच से जुड़ी हुई सभी वस्तुओं एवं क्रिया कलापों को भी भाषा की कोटी में रखा जा सकता है। नाटक की भाषा सिर्फ पढ़ने के लिए नहीं, देखने और सुनने के लिए भी है। नाट्यभाषा को एक निश्चित परिधि में बाँधना कठिन कार्य है। वह अपनी परिवर्तनशीलता के साथ आगे बढ़ती जा रही है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रो. दिलीप सिंह, भाषा का संसार, भूमिका, पृ.9
2. वही, पृ.23
3. डॉ.कृष्णकुमार गोस्वामी, शैली विज्ञान और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा, पृ.23
4. डॉ. संजय द्विवेदी, प्रसाद की नाट्यभाषा, पृ.(भूमिका) 14
5. वही, पृ.16
6. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, भाषा और संवेदना, पृ.13
7. डॉ.गोरखनाथ माने, साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में चित्रित यथार्थ, पृ.29
8. सं.कन्हैलाल जोशी, भरतमुनिप्रणीतं नाट्यशास्त्रम्, श्रीमदभिनवगुप्ताचार्य विरचितया अभिनवभारती-संस्कृतव्याख्याया (समुद्भासितम्), पृ.272,273
9. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और पृथ्वीनाथ द्विवेदी, नाट्यशास्त्र की भारतीय पंरपरा और दशरूपक (धनिक की वृत्ति सहित), पृ.154
10. नेमीचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ.38
11. सं.विनय, समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ.70

12. डॉ. गोविन्द चातक, नाट्यभाषा, पृ.19

13. प्रो.अच्युतन, दयाप्रकाश सिंहा-नाट्य रचनाधर्मिता, पृ.6

14. महेश आनंद, रंग दस्तावेज़, सौ साल (खंड-एक), पृ.102

15. रमेश गौतम, हिंदी रंगभाषा स्वरूप और विकास, पृ.117

16. David Birch, The Language of Drama : Critical Theory and Practice, p.22

17. Gareth Lloyd Evans, The Language of Modern Drama, p.2-3

18. David Birch, The Language of Drama : Critical Theory and Practice, p.11

19. डॉ.गोविन्द चातक, नाट्यभाषा, पृ.14

20. वही, पृ.16

21. वही, पृ.22-23

22. वही, पृ.25

23. गिरीश रस्तोगी, रंगभाषा, पृ.142

24. वही, पृ.144

25. वही, पृ.149-150

26. वही, पृ.152

27. वही, पृ.156

28. गिरीश रस्तोगी, रंगभाषा, पृ.164

29. वही, पृ.165

30. वही, पृ.169

31. नटरंग, अंक 97-98, पृ.61

32. डॉ.प्रेमलता, आधुनिक हिन्दी नाटक और भाषा की सृजनशीलता, पृ.18

33. सत्यदेव मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र : अधुनातन संदर्भ, पृ.36

34. डॉ. प्रेमलता, आधुनिक हिन्दी नाटक और भाषा की सृजनशीलता, पृ.25

35. डॉ.शेख.आर.वाय, नरेन्द्र मोहन का नाट्यसंसार, पृ.41

36. डॉ. गोविन्द चातक, नाट्यभाषा, पृ.33

37. वही, पृ.34

38. वही, पृ.35

39. डॉ. प्रेमलता, आधुनिक हिन्दी नाटक और भाषा की सृजनशीलता, पृ.11

40. डॉ. गोविन्द चातक, नाट्यभाषा, पृ.46

41. वही, पृ.50

42. वही, पृ.51-52

दूसरा अध्याय

नाट्यभाषा : परंपरा एवं वर्तमान

नाटक की भारतीय परंपरा बहुत पुरानी है। भारतीय विचारधारा के आधार पर नाटक का मूल्याँकन किया जाए तो यह स्पष्ट है कि नाटक सभी कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' यह उक्ति नाटक की महिमा का द्योतक है। ऐसा कहा जाता है कि महाकाव्य, संदेशकाव्य, चंपू काव्य जैसी काव्य विधाओं में नाटक काव्य सबसे हृदयस्पर्शी है। अंग्रेज़ी में नाटक को 'Drama' और संस्कृत में 'रूपक' कहा जाता है। विद्वानों के अनुसार Drama शब्द की उत्पत्ति 'Do' ध्वनि से हुई। इसी प्रकार 'रूपक' शब्द का अर्थ होता है 'नट-नटियों द्वारा मंच पर प्रदर्शन करने केलिए बनाया गया या गठन किया गया कृति विशेष'। धनंजय का कहना है कि- "जीवन की विभिन्न अवस्थाओं की अनुकृति उपस्थित करनेवाला यह दृश्य काव्य 'रूपक' भी कहलाता है।"[1] संक्षेप में कह सकते हैं कि नाटक एक क्रिया प्रधान कला है।

नाटक से संबन्धित सबसे प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र नाट्यकला का विश्वकोश है। काव्य, व्याकरण, अलंकार, नृत्य, नाट्य, संगीत, वाद्य आदि से लेकर रचयिता, निर्देशक एवं अभिनेताओं के लिए आवश्यक निर्देश इसमें शामिल है। भरतमुनि की नाट्य संबन्धी कल्पना अत्यंत व्यापक थी। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में नाट्य रचना, प्रयोग और प्रस्तुतीकरण से संबन्धित बातों

का विस्तृत विवेचन पूरी वैज्ञानिकता के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होंने नाट्यशास्त्र के अठारहवीं अध्याय में नाट्यभाषा का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने भाषा को नाटक का शरीर माना है। नाट्यशास्त्र में प्रमुख रूप से चार प्रकार की भाषाओं का उल्लेख किया है- 1) अतिभाषा, 2) आर्यभाषा, 3) जातिभाषा, और 4) न्योन्यन्तरी भाषा। इसमें अतिभाषा देवगण की भाषा है और आर्यभाषा भूपालों की। जातिभाषा दो प्रकार के होते हैं - संस्कृत पाठ्य एवं प्राकृत पाठ्य। अनार्यों नीच लोगों एवं स्त्रियों द्वारा किये जानेवाली भाषा है - प्राकृत पाठ्य। पुरुष एवं ऊँच जाति के लोगों की भाषा है संस्कृत पाठ्य। न्योन्यन्तरी भाषा पशु-पक्षियों की भाषा है।

उन्होंने रूप, गुण, जाति एवं विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार नाटक में विभिन्न भाषाओं के प्रयोग पर बल दिया। उन्होंने नाट्यभाषा के संदर्भ में अभिनय को मूल में रखा है। वाचिक अभिनय के अंतर्गत उन्होंने संबोधन को महत्व दिया है। नाट्यभाषा के अंतर्गत उन्होंने वृत्तियों को भी समेट लिया। इन चार वृत्तियों से उन्होंने भारती वृत्ति को नाट्यभाषा के संदर्भ में अधिक महत्व दिया।

"या वाक्प्रधानता पुरुषप्रयोज्या।
स्त्रीवर्जिता संस्कृतपाठ्ययुक्ता।।

स्वनामधेर्येभरतैः प्रयुक्ता।

सा भारती नाम भवेत् वृत्तिः।।26।।"[2]

भरतमुनि ने अत्यंत व्यापक दृष्टि से नाट्यभाषा को देखा और इसका विवेचन भी किया।

2.1 हिंदी की नाट्यभाषा और उसका विकास

नाटक में भाषा की पहचान अभिव्यक्ति के सबसे अनूठे अंग के रूप में पहचानी जाती है। हिंदी नाट्यभाषा की पंरपरा की शुरूआत हिंदी भाषा की शुरूआत से जुड़ी है। हिंदी की नाट्यभाषा को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित कालखण्डों में विभाजित किया गया है।

1. भारतेन्दु पूर्व युगीन नाट्यभाषा
2. भारतेन्दु युगीन नाट्यभाषा
3. द्विवेदी युगीन नाट्यभाषा
4. प्रसाद युगीन नाट्यभाषा
5. प्रसादोत्तर युगीन नाट्यभाषा
6. स्वातंत्र्योत्तर युगीन नाट्यभाषा।

2.1.1 भारतेन्दु पूर्व युगीन नाट्यभाषा

जब साहित्य में हिंदी भाषा, विशेषतः कविता में प्रबल माध्यम बनकर चमकते काल से लेकर भारतेन्दु काल तक हिंदी साहित्य में नाटक की एक प्रबल प्रगति न देखी गई। इसका अर्थ यह नहीं कि नाटक कतई नहीं। हिंदी साहित्य के इतिहास में नाटक की खोज किया तो दो तरह के नाटक सामने आते हैं। एक है 'मौलिक' दूसरा 'अनूदित'। मौलिक नाटक की कोटी में - रीवां के महाराज प्राणचन्द्र चौहान कृत 'रामायण महानाटक', कृष्ण जीवन लच्छीराम का 'रामलीला विहार' नाटक, गुरुगोविन्द सिंह का 'चंडी चरित्र', राजकवि केस का 'माधवानल नाटक', लछमन दास का 'प्रह्लाद', लक्ष्मण शरण मधुकर का 'रामलीला विहार नाटक', विश्वनाथ सिंह का 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गिरिधर दास कृत 'नहुष' आदि नाटक आते हैं। उस समय का अनूदित नाटक मुख्यतः संस्कृत नाटकों का पद्यानुवाद है। मल्ह सिंह का 'प्रबोध चन्द्रोदय', राजा जसवंत सिंह का 'प्रबोध चन्द्रोदय', नेवाज का 'शकुंतला नाटक', सोमनाथ का 'माधव विनोद', ब्रजवासीदास का 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि इस कोटि के नाटक हैं। जयशंकर त्रिपाठी ने 'श्री चन्द्रावली नाटिका' की भूमिका में बताया है कि- "भारतेन्दु के पूर्व जो नाटक पाए जाते हैं, उनमें 'आनन्द रघुनन्दन' को छोड़कर प्रायः

सभी पद्यमय है और उन नाटकों में संस्कृत की नाट्य शास्त्रीय परंपरा के अनुसार न तो रंगमंच के निर्देश है तथा न उनमें शास्त्रीय निर्देश से युक्त कथावस्तु के गठन और कार्यव्यापार की ओर ध्यान दिया गया है।"[3]

हिंदी या खड़ीबोली से पहले साहित्य में ब्रजभाषा का प्रचलन था। इसीलिए भारतेन्दु पूर्व के नाटक की भाषा ब्रज थी। 'आनन्द रघुनन्दन' में देश भाषाओं का प्रयोग भी हुआ है। जैसे-गुजराती, मराठी, मैथिली आदि। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी के पहले नाटक के रूप में गिरिधर दास कृत 'नहुष' को माना है। दशरथ ओझा और गुलाबराय ने 'विश्वनाथ सिंह' के आनन्द रघुनन्दन को हिंदी के पहले नाटक के रूप में स्वीकार किया। 'नहुष' नाटक छः अंकों में विभाजित है। इसकी कथावस्तु का आधार महाभारत है। 'नहुष' नाटक में ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली मिश्रित ब्रजभाषा दोनों का प्रयोग हुआ है।

भारतेन्दु पूर्व युग के नाटकों की भाषा ब्रज, अवधी एवं खड़ीबोली का मिश्रित रूप है। उस समय के नाटककार नई ढंग की नाट्यभाषा को रूपायित करने में उतना सक्षम नहीं रहे। वे संस्कृत नाटकों से मुक्त नहीं थे।

2.1.2 भारतेन्दु युगीन नाट्यभाषा

हिंदी भाषा और साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रभाव गहरे रूप में पड़ा था। हिंदी के आधुनिक युग की शुरूआत भारतेन्दु से मानी जाती है। प्रेमचंद का कहना है कि - "शुद्ध हिंदी की नींव भारतेन्दु के कलम ने डाली और उस ज़माने से अब तक हिंदी गद्य ने बहुत कुछ तरक्की हासिल कर ली है मगर आज भी हरिश्चन्द्र के हिंदी गद्य की प्रौढ़ता, चुलबुलापन और शुद्धता प्रशंसनीय है।"[4] साहित्य का सर्वतोन्मुख विकास भारतेन्दु काल में हुआ। भरतमुनि ने परंपरा से हटकर भाषा और साहित्य को एक नई दिशा देकर उस क्षेत्र में नई चेतना लाई। गद्य के विभिन्न क्षेत्रों में प्रौढ़तम रचनाएँ पनपी। काव्यभाषा में खड़ीबोली का प्रयोग हुआ।

भारतेन्दुकालीन सामाजिक स्थिति में सुधार लाना ज़रूरी था। सामाजिक तौर पर देखें तो उस समय कई तरह के आन्दोलनों का बोलबाला था। इनमें प्रमुख थे ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसैटी, महाराष्ट्र समाज, गाँधीजी का मानवतावाद आदि। इनका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। ब्रह्मसमाज समाज में प्रचलित अंधविश्वासों को मिटाकर प्रकाश लाने का प्रयास किया था। इसीतरह आर्यसमाज का लक्ष्य भी एक ही था। मूर्तिपूजा, जातिभेद, बालविवाह, एवं सामाजिक

कुरीतियों के प्रति आर्यसमाज ने तीखा विरोध किया। इन आन्दोलनों का प्रभाव भारतेन्दु कालीन नाटकों पर पड़ा।

भारतेन्दु और उनके मण्डल के साहित्यकारों ने नाटक को केवल मनोरंजन के माध्यम के रूप में नहीं, जन-जागरण का एक सशक्त माध्यम के रूप में देखा। उनकी रचनाएँ अंधविश्वास के विरुद्ध खडी होनेवाली एवं समसामयिक घटनाओं पर ज़ोर देनेवाली थीं। उस समय का समाज नए को अपनाने में विमुखता दिखानेवाले था। उस समय की सामाजिक स्थिति भारतेन्दु और उनके मण्डल के साहित्यकारों ने भली-भाँति समझती थी। इसलिए उन्होंने ठीक तरह की दवा देकर समाज को जागृत करने का प्रयास किया। इसकेलिए उन्होंने अच्छे माध्यम के रूप में नाटक को चुन लिया। नाटक के माध्यम से नए-नए सोच एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र को जन साधारण तक बहुत आसानी से पहूँचा जा सकता है।

नाटक एक ऐसी विधा है, जो रंगमंच पर खेले जाने से अपनी पूर्णता में पहूँचता है। भारतेन्दु युग के पूर्व की नाट्यभाषा उस समय के अंधे समाज को जागृत करने में पर्याप्त नहीं थी। इसलिए भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने एक नई रंगभाषा की तलाश की। आधुनिक युग की माँग की पूर्ती के लिए भारतेन्दु पूर्व युग की भाषाएँ

पर्याप्त नहीं थीं। भारतेन्दु ने उस समय के समाज के लिए ऐसी एक सशक्त भाषा ढूँढी, जिसकेलिए कोई पूर्व परंपरा का योगदान नहीं रहा। भारतेन्दु और उनकी मण्डली ने समाज सुधार के आन्दोलन में इसी सशक्त भाषा द्वारा भाग लिया और इसी भाषा द्वारा उस समय के गिरे जानेवाले समाज को खड़ा करने का प्रयास किया। उनकी इस प्रवृत्ति को साहस कहकर 'मुनीश शर्मा' ने बताया है कि- "काशी जैसे रूढ़ीवादी, परंपरापोषक नगर के बीच रहकर उन्होंने अपनी बात कहने का साहस किया। विरासत और सामाजिक परिवेश में कुछ भी प्रेरणास्रोत नहीं था, बावजूद इसके उन्होंने अपने सहधर्मी साथियों के सहयोग से समाज और भाषा के लिए एक आन्दोलन खड़ा कर दिया।"[5]

समसामयिक समस्याओं को जीवंत रूप में दिखानेवाले नाटक जैसी सशक्त विधा को ऐसी एक भाषा गढ़ना भारतेन्दु के लिए एक चुनौती का कार्य था। भाषाई दृष्टि से वे प्राचीनता को संरक्षित करने तथा नवीनता को लाने में सफल रहे। उनकी भाषा में सांप्रदायिक सौहार्द्र की झलक देख सकती है। उर्दू के प्रति उनका मोह इसका उदाहरण है। इसी हेतु उनकी भाषा में संस्कृतनिष्ठ हिंदी, अंग्रेज़ी एवं देशज शब्दों का प्रयोग देखने को मिलते हैं।

भारतेन्दु के समय की परिस्थिति बहुत भिन्न थी। नयी शिल्प, नए सोच, ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा एवं तकनीकी क्षेत्र में भी बदलाव आया। लेकिन उस समय की सामाजिक मानसिकता इस बदलाव को स्वीकार करने में विमुख रही। ये सारी बातें ध्यान में रखकर उन्होंने नाटक जैसी सशक्त विधा की भाषा को रूप दी। उस समय के भारतीय समाज को जागरूक करने का पहला प्रयत्न भारतेन्दु और उनके सहभागियों द्वारा हुआ। नाटक के प्रति विमुखता दिखानेवाले समाज में नाटक का अस्तित्व स्थिर करने केलिए भारतेन्दु और उनके मण्डलियों ने ऐसा साहस दिखाया, जो उस समय समाज में आधिपत्य स्थापित कर आगे जानेवाले पारसी रंगमंच के गूढ लक्ष्यों को तोड़-फोड़कर सामाजिक हितों को मूल्य देनेवाली विधा के रूप में नाटक का अस्तित्व स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुआ। शौकिया रंगमंच का आरंभ हिंदी में भारतेन्दु काल में हुआ। यह पारसी रंगमंच में लीन हुए समाज को उससे विचलित करने की एक नई रास्ता थी।

नाटक रंगमंच से जुडे होने के कारण मंचीय तत्वों को भी ध्यान में रखकर नाटक लिखना ज़रूरी बात है। उस समय प्रचलित लोक नाटकों को नमूना बनाकर आगे चलना बेकार की बात है, क्योंकि लोक नाटकों में संपूर्ण नाटकीय तत्वों का अभाव है। इनका लक्ष्य मनोरंजन

के द्वारा पौराणिक बातों पर ज़ोर देकर लोगों के मन में भक्ति-भावना जागना है। उन्होंने पारसी थियेटर की संप्रेषण क्षमता को अपनाया, क्योंकि उस समय के अंधे-समाज को नाटक की ओर आकर्षित करने के लिए यह उचित रास्ता था। प्रेमघन का कथन है - "उनकी समस्त प्रकार की बनक, हाव-भाव, कटाक्ष कहाँ तक गिनावै सभी अच्छा है। केवल भाषा अभी अच्छी तरह शुद्ध और साफ नहीं है।"[6]

भारतेन्दु और उनके मण्डलियों ने साधारण जन मानस को भी साहित्य की ओर आकृष्ट करने का या अधिक जुड़ाने का काम किया। उसके पहले के दरबारी साहित्य सामान्य जन जीवन से दूर थे। सामान्य जन जीवन में होनेवाली बातों को छूकर, उनके दुख-दर्द को पहचानकर उनकी ही भाषा में उनके सामने खड़ा कर दिया। इससे सामान्य जन अपने देश में होनेवाले अत्याचारों एवं कुरीतियों के प्रति जागरूक होकर अपने देश के हित के लिए संघर्षरत हुए।

भारतेन्दु ने अपनी रचनाओं में पात्रों का स्वभाव, पात्रों की चारित्रिक क्षमता एवं परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग 'श्री चन्द्रावली नाटिका', 'अंधेर नगरी', 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों में बहुत प्रभावी रूप में किया है। 'भारत दुर्दशा' नाटक में बंगला भाषा साफ़ नज़र आ रही है।

"बंगाली : .... इसका पेशतर कि भारत दुर्देव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है किन्तु प्रश्न एई है जे हम लोग उसका दमन करने शाकता कि हमारा बीर्ज्जो बल के बाहर का बात है। क्यों नहीं शाकता? अलबत्ता शकैगा, परन्तु जो शब लोग एक मत्त होगा।"[7]

उन्होंने तीखी भाषा में अपने प्रहसनों में व्यंग्य को प्रस्तुत किया है।

"राजा : अच्छा, कल्लू बनिये को पकड़ लाओ। (नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिये को पकड़ लाते हैं) क्यों बे बनिये! इसकी लरकी, नहीं बरकी, क्यों दबकर मर गयी?"[8]

भारतेन्दु ने नाटक में संगीत को अपना महत्व दिया। गीत-संगीत का प्रयोग उन्होंने अपने नाटकों में खूब किया है। पात्रों के मानसिक द्वन्द्व, कथा का विकास एवं नाट्यानुकूल वातावरण प्रस्तुत करने में गीत-संगीत का प्रयोग बहुत सहायक हुआ है। भारतेन्दु के नाटकों में कई तरह के गीत मिलते हैं। जैसे - ग़ज़ल, राग काफ़ी, राग भैरव, ठुमरी, तिताला, पूरबी बिहार तथा लावनी आदि। 'भारत दुर्दशा' नाटक का पहला अंक एक योगी द्वारा गाया गया लावनी से शुरू होती है।

"रोअहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई।। ध्रुव।।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई।।"[9]

चन्द्रावली एवं अंधेर नगरी में भक्तिगान का प्रयोग हुआ है।

"राम भजो राम भजो राम भजो भाई।
राम के भजे से गनिका तर गयी,
राम के भजे से गीध गाति पाई।"[10]

इसी तरह उनके नाटक में समूहगान का भी प्रयोग मिलता है। चन्द्रावली नाटिका में गीत द्वारा चन्द्रावली के दुख की गहराई को व्यक्त किया गया है -

"देखि घन स्याम घनस्याम की सुरति करि
जिय में बिरह घटा घहरि-घहरि उठै।
त्यौंही इन्द्रधनुष- बगमाल देखि बनमाल
मोतीलर पी की जिय लहरि-लहरि उठै।।"[11]

ब्रज की बोली का प्रयोग भी इसमें मिलता है।

"ललिता-कहा गुरू कहि बोलहीं ?

जोगिन-प्रेमी मेरो नाँव

ललिता-जोग लियो केहि कारनै? "[12]

इसीतरह उनके नाटकों में अरबी, फारसी शब्दों का भी प्रयोग देखा जा सकता है। जैसे - जहन्नुम, तुर्रा, गज़ब आदि।

वातावरण की अभिव्यक्ति के लिए 'अंधेरे नगरी' में गीतों का प्रयोग सफल ढंग से किया गया है-

"अंधेरे नगरी अनबूझ राजा।

टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।

नीच ऊँच सब एकहि ऐसे।

जैसे भँडुए पण्डित तैसे।"[13]

स्वगत भाषण का भी प्रयोग करके उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को समृद्ध किया है। इसका उदाहरण है - 'भारत दुर्दशा' एवं 'भारत जननी' नाटक। स्वगत कथनों द्वारा परिवेश एवं मनोवृत्तियों को उजागर कर सकता है। 'भारत दुर्दशा' नाटक के छठे अंक में भारत भाग्य का कथन इसका उदाहरण है। 'चन्द्रावली नाटिका' एवं 'विषस्य विषमौषधम' में आकाश भाषित संवादों का प्रयोग है।

समस्त रंगानुभव के साथ नाट्यभाषा अपना सार्थक रूप धारण कर लेती है। रंगमंच पर नाटक से जुड़ी जो वस्तुएँ हैं ये सब नाट्यभाषा के रूप में प्रेक्षकों से संवाद करती हैं। संवाद एवं अभिनय को अपनी पूर्णता में पहूँचाने के लिए रंगमंच में उपस्थित सामग्रियों का अपना महत्व है। इस युग में रंगमंच की सामग्रियाँ आज की तरह उतनी विपुलित नहीं थीं। तकनीक उतनी विकसित नहीं थी, प्रकाश व्यवस्था एवं ध्वनि संयोजन के लिए आज की तरह की व्यवस्थाएँ नहीं थी। प्रकाश योजना के माध्यम से उन्होंने अपने नाटकों को अर्थवान बना दिया है। 'भारत दुर्दशा' नाटक में 'अंधकार' नामक पात्र के प्रवेश के अवसर पर उसमें निहित प्रतीकार्थ को उसी तीक्ष्णता के साथ प्रस्तुत करने केलिए उन्होंने ऐसा निर्देश दिया है कि-

"रंगशाला के दीपों में से अनेक बुझा दिए जायंगे।"[14]

भारतेन्दु की भाषा शैली के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है- "उनकी भावावेश की शैली दूसरी है और तथ्यतिरूपण की दूसरी। भाववेश के कथनों में वाक्य प्रायः बहुत छोटे-छोटे होते हैं और पदावली सरल बोलचाल की होती है, जिसमें बहुत प्रचलित अरबी फारसी के शब्द भी कभी-कभी, पर बहुत कम आ जाते हैं।"[15]

भारतेन्दु युग के नाटककारों में लाला श्रीनिवास दास, पं. प्रतापनारायण मिश्र, पं. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालकृष्ण भट्‌ट, राधाकृष्ण दास, अम्बिकादत्त व्यास, तोताराम आदि प्रमुख हैं। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण उस युग में अपनी अलग पहचान बन पाया। उनके अतिरिक्त और कुछ नाटककार भी हैं- काशीनाथ खत्री, शालिग्राम वैश्य, पं. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्‌या, खंगबहादूर मल्ल, किशोरीलाल गोस्वामी आदि। ऐतिहासिक, राष्ट्रीय एवं प्रेमसंबंधी नाटकों की रचना करके इन साहित्यकारों ने इस युग को संपन्न किया।

बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने नाटक की दो बातों पर ज़ोर दिया, जिनके द्वारा नाटक अधिक प्रभावी बन जाता है। एक है नाटक की भाषा और दूसरा अभिनय। उनकी रंगभाषा की संकल्पना ऐसी है कि जो परिष्कृत एवं श्लील हो। उस समय के नाटक की स्थिति पहचानकर उन्होंने ऐसी भाषिक मान्यताएँ रखीं, जिनमें अभिनय का भी महत्व हो। उस समय की रंगभाषा समाज को जागृत करने में सक्षम रही। समाज का हित सामने रखने के कारण उस समय जो नाटक लिखे या खेले जाते हैं उस पर तीखे-तीखे स्वर से उसकी आलोचना करती थी। इस आलोचना में नाटक की भाषा पर अधिक ज़ोर दिया करते थे- "ग्रन्थकार

को चाहिये दूसरी बार जरा सुधर के छपवावैं ग्रन्थ में कई एक बडे दोष भी हैं। स्त्रियाँ कैसी ही चतुर और पढ़ी लिखी हों पर नाटककार को चाहिये कि इनकी भाषा पुरुषों से हल्की रक्खें, नौकर चाकरों की बोली में संस्कृत के शब्द न भरें! युद्ध क्षेत्र में पात्रों का बाजे की ताल पर पाँव उठाना दक्खिनियों के नाटक की नकल है पर वीर रस से दूर नाचना और युद्ध दिखाना भेद रखता है!"[16]

प्रताप नारायण मिश्र ने नाटक में इसी तरह की भाषा पर ज़ोर दिया कि जो जनमानस को सामाजिक यथार्थ के प्रति जागरूक कर दें। उनका मानना है कि काव्यात्मक भाषा से काम नहीं आएगा। उन्होंने भारतीय मानस को चेतना देनेवाली, यथार्थ से जुड़ी हुई भाषा की ज़रूरत पर ज़ोर दिया। संस्कृत युगीन नाटकों से भिन्न उनका यह सोच भारतेन्दु ने अपने 'नाटक' नामक निबन्ध में प्रतिपादित किया। बालकृष्ण भट्ट ने 'भवभूति' के विचार पर ज़ोर देकर नाटक में पाण्डित्य के स्थान पर यथार्थ को स्थापित किया। भारतेन्दु पूर्व युग में न देखनेवाली यह प्रवृत्ति भारतेन्दु युग की एक कसौटी है।

इस युग के अन्य नाटककारों ने भारतेन्दु की तरह सभी शैलियों का प्रयोग किया है। उन्होंने छोटे-छोटे कथनों से लेकर लंबे-लंबे स्वगत कथनों का भी प्रयोग किया है। संवाद में आकाश भाषित संवाद शैली के

अलावा संस्कृत के 'नियत श्राव्य' संवाद शैली का भी प्रयोग किया गया है। उन्होंने पात्रानुकूल भाषा पर ज़ोर दिया। मुसलमान पात्र द्वारा अरबी, फारसी और उर्दू का प्रयोग, उच्चवर्ग के लोग एवं शिक्षित लोगों द्वारा खड़ीबोली का प्रयोग, अशिक्षित एवं गाँववालों के लिए ब्रज और प्रादेशिक भाषा का प्रयोग आदि।

अम्बिका दत्त व्यास ने अपने नाटक 'भारत सौभाग्य' में गीत का प्रयोग व्यंग्यात्मक वातावरण की सृष्टि केलिए किया है -

"भारत विषय भोग को प्यारो
पाई संग अंगरेज़ी को अब है गयो अधिक दुलारो।"[17]

हास्य-व्यंग्य की अभिव्यक्ति के अलावा विरह से संतप्त हृदय की वेदना गीतों द्वारा स्पष्ट करने में नाटककारों ने सफल हुई है -

"सखी री मन मान्यो सुख पायो।"[18]

भारतेन्दु और उनके मण्डलियों ने रंगभाषा का जो आधार बना दिया, वह आगे के युगों के लिए एक कदम था। रंगभाषा का असली पहचान भारतेन्दु युग में ही पल्लवित हुआ। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं आधुनिकता के नए-नए आयाम खुलनेवाले इस युग में इनकी अभिव्यक्ति के लिए ऐसी एक सशक्त भाषा की ज़रूरत है, भारतेन्दु मण्डली ने इसकी

तलाश में सफल हुई। भारतेन्दु युग के बाद नाटक की परंपरा बहुत कमज़ोर पड़ गया। रंगमंच का अभाव एवं पारसी रंगमंच का प्रभाव, ये बातें हिंदी नाटक प्रेमियों के मन में हिंदी नाटक ने कारण बन गया।

2.1.3 द्विवेदी युगीन नाट्यभाषा

द्विवेदी युग नाटक के संदर्भ में उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना भारतेन्दु युग। द्विवेदी युग में मौलिक नाटक से ज़्यादा अनूदित नाटक की रचना हुई। मौलिक नाटक कम ही लिखे गए। माखनलाल चतुर्वेदी का नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटकीय तत्वों की दृष्टि से सफल है। इसके साथ-साथ मिश्रबन्धु का 'नेत्रोन्मीलन', सुदर्शन का 'ऑनररी मजिस्ट्रेट' आदि प्रमुख हैं। अनुवादक के रूप में उस युग में प्रमुख हैं- श्रीरामचन्द्र वर्मा, रूपनारायण पाण्डेय, प्रेमचंद, लाला सीताराम आदि। इस युग में संस्कृत नाटकों से ज्यादा अंग्रेज़ी नाटकों का अनुवाद हुआ।

द्विवेदी युगीन नाटककार भी समाज सुधार पर बल दिया था। इस युग के नाटककारों का दृष्टिकोण सुधारवादी एवं आदर्शवादी थे। उनके नाटकों में वीर एवं करुण रस का चित्रण अधिक मिलता है। "सुधारवादी विचारधारा का परिचय सामाजिक नाटकों यथा प्रेमचन्द का 'संग्राम', मिश्रबन्धु का 'नेत्रोन्मीलन', जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का 'मधुरमिलन', बद्रीनाथ भट्ट का 'चुंगी की उम्मीदवारी' या 'मेंबर की धूम' तथा

गोपालराम गहमरी का 'देश-दशा' आदि में स्पष्ट झलकता है।"[19] इस समय के नाटककारों ने सामाजिक कुरीतियों पर तीखे स्वर में व्यंग्य किया। इनके नाटकों में इन कुरीतियों से छुटकारा पाने का निर्देश भी शामिल है। सामाजिक कुरीतियों एवं विकृत स्थितियों से मुक्त करके समाज को साफ करने का प्रयास इस युग में निरंतर चलते रहे और उस समय में विदेशी शासन का बोलबाला था। इसके विरुद्ध जन जीवन को जागृत करने का भी निरंतर प्रयास करते रहते थे। ये सब उस समय की सुधारवादी दृष्टिकोण को और भी विकसित कराने का प्रेरक बिन्दु थे।

द्विवेदीयुगीन नाटककारों का मुख्य लक्ष्य भाषा का संस्कार था। नाट्यशिल्प की दृष्टि से द्विवेदी युग कुछ ओर परंपरा का पालन करते थे। लेकिन इस समय के नाटकों में प्राचीन तत्वों की उपेक्षा भी हम देख सकते हैं, जैसे - नान्दी, भरतवाक्य आदि। भाव की दृष्टि से वे परंपरावादी थे। इस युग में पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों की रचना अधिक हुई। अनूदित नाटक के संदर्भ में अंग्रेज़ी नाटकों का अनुवाद उस समय की नाटकीय पृष्ठभूमि पर नया बदलाव लाया था।

नाट्यभाषा के संदर्भ में रंगमंच को नकारा नहीं जा सकता। रंगमंच का अभाव उस समय के नाटकों की कमी है। डॉ. देवेन्द्रकुमार गुप्ता की राय में- "अभिनेयता के तत्व का गौण रूप इस तथ्य का

द्योतक है कि द्विवेदीयुगीन हिन्दी नाटक के पास अपने रंगमंच का अभाव था।"[20] द्विवेदीयुग असल में नाटक के संदर्भ में भारतेन्दु एवं प्रसादयुग के बीच की कड़ी है।

2.1.4 प्रसाद युगीन नाट्यभाषा

भारतेन्दु युग की तुलना में प्रसादयुग में ही सामाजिक क्षेत्र में अधिक विकास हुआ। अंग्रेज़ों की दमन शासन के विरुद्ध जनता जागरूक थी। भारत में स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन शुरू हो गया। गाँधीजी ने अपनी मानवतावादी दृष्टिकोण द्वारा मानव जीवन में समानता लायी। उन्होंने मानव जीवन के बीच प्रचलित वर्ण-व्यवस्था, जाति-भेद आदि अनीतियों को मिटाकर समानता का प्रकाश फैला। उस समय समाज में नारी की स्थिति में भी बदलाव आया था। वे पुरुषों के समान आन्दोलन में भाग लेने लगीं। उस समय का साहित्य भी इसके लिए प्रेरणा स्रोत बन गया। प्रसाद के नाटकों से प्रेरित होकर अनेक नारियाँ स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लीं। गाँधीजी ने सत्य एवं अहिंसा पर बल देकर स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेनेवाले को प्रेरणा दी और उन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी पर बल दिया। उस समय की परिस्थितियों से प्रेरणा पाकर प्रसाद युगीन नाटकों का जन्म हुआ।

जयशंकर प्रसाद एवं उनके सहयोगी नाटककारों ने जनजागरण, स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता एवं विश्व कल्याण की भावना को अपनी नाटकों द्वारा जन मानस तक पहूँचा। राष्ट्रीय आन्दोलनों को और भी मज़बूत करने में नाटककारों की भूमिका नकारा नहीं जा सकती। प्रसादयुगीन नाटककारों के नाटकों में हिन्दु-मुसलमान एकता की झलक मिलती है। अंग्रेज़ी शासन के कारण बिगड़ी हुई इस एकता को वापस लाने का प्रयास उस युग के नाटककारों द्वारा हुआ। इसके साथ-साथ स्त्री-पुरुष का समान अधिकार, हिंदु-मुसलमान एकता, अछूतोद्धार आदि प्रवृत्तियाँ प्रसादयुगीन नाटकों में गाँधीजी के प्रभाव से हुईं। "कोई भी जागरूक साहित्यकार अपने युगबोध अथवा युगीन जन जीवन से असम्पृक्त नहीं रहता। अतः यह पूर्णतया स्वाभाविक है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नाट्य रचना करनेवाला जयशंकर प्रसाद अपने युग की भावनाओं एवं जागरूक विचारों के अतिरिक्त राष्ट्रीय आन्दोलनों, सांस्कृतिक गतिविधियों और अपने युग के महान व्यक्तियों एवं विश्वव्यापी परिस्थितियों से प्रेरित हुए हैं।"[21]

जयशंकर प्रसाद ने नाटक को सांस्कृतिक जागरूकता का एक सशक्त माध्यम के रूप में माना। इसलिए भाषा को अधिक सशक्त होना चाहिए। उनका नाटक केवल संवादात्मक संप्रेषण नहीं, प्रत्येक शब्द को

अपनी एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति होती है। उन्होंने नाटक के लिखित रूप को प्रधानता देकर 'नाटक के लिए रंगमंच' पर ज़ोर दिया। रंगमंच नामक लेख में उन्होंने कहा- "रंगमंच के संबन्ध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाएँ। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हों, जो व्यावहारिक है।"[22]

हिंदी नाटक क्षेत्र में सकारात्मक परिवर्तन प्रसाद के आगमन से हुआ। उन्होंने युग प्रवर्तक बनकर नाटक को एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने शेक्सपियर के प्रभाव से स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण नाट्य शिल्प में लाया। इस स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से उन्होंने नाट्यकला को अग्रणी बना दिया। प्रसादजी ने 1910 से 1933 तक के रचनाकाल में कुलमिलाकर तेरह नाटक लिखे हैं। 'सज्जन' (1910), 'कल्याणि-परिणय' (1912), 'करुणालय' (1913), 'प्रायश्चित' (1914), 'राज्यश्री' (1915), 'विशाख' (1921), 'अजातशत्रु' (1922), 'कामना' (1923), 'जनमेजय का नागयज्ञ' (1923), 'स्कन्दगुप्त' (1928), 'एक घूँट' (1924), 'चन्द्रगुप्त' (1931), 'ध्रुवस्वामिनी '(1933) आदि उनके नाटक हैं। इन सभी नाटकों में आरंभ से ही प्रसाद नए प्रयोगों के प्रति सचेष्ट दिखाई देते हैं।

प्रसाद से प्रभावित होकर उस समय में अनेक नाटककार आए हैं। ये सब प्रसाद के नाटक संबन्धी नियमों एवं आदर्शों को ग्रहण करके

नाटक लिखे। इनमें प्रमुख हैं - हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द वल्लभ पन्त, बद्रीनाथ भट्ट, जी.पी.श्रीवास्तव, सुदर्शन, रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्ददास, रामनरेश त्रिपाठी, वियोगी हरि, माखनलाल चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट आदि। इन्होंने अपने नाट्यसाहित्य में सामाजिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक पृष्ठभूमियों का चित्रण करते हुए भी आधुनिक जीवन के प्रति और समसामयिक मुद्दों से भी वे अवगत थे। नाट्यभाषा की दृष्टि से इस युग के नाटककारों ने भी अपनी प्रतिभा दिखाई है। बद्रीनाथ भट्ट के 'बेनचरित', 'कुरुवनदहन' और 'दुर्गावती', सेठ गोविन्ददास का 'प्रकाश' प्रसाद युग के प्रहसनकार जी.पी. श्रीवास्तव के 'कुर्सी मैन', 'गड़बड़ झाला', 'उलट फेर', 'दुमदार आदमी', सुदर्शन का 'दयानन्द', 'अंजना' आदि नाटक, मैथिली शरण गुप्त का 'चन्द्रहास', 'तिलोत्तमा' एवं वियोगीहरि कृत 'छद्मयोगिनी' और 'प्रबुद्ध यामुम' आदि नाटक प्रमुख हैं।

प्रसाद युगीन नाटकों ने लाक्षणिक एवं अर्थ संपन्न भाषा के प्रयोग से नई पहचान बन पायी है। नाट्यशिल्प में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। नाटक के अंकों और दृश्यों को निश्चित रूप प्रदान किया था। पारसी रंगमंच का प्रभाव उस युग में बराबर पड़ा। रंगमंच को जीवंत बनाए रखने के लिए पारसी रंगमंच एक हद तक सहायक सिद्ध होता है।

प्रसाद के नाटकों में पाश्चात्य एवं भारतीय नाटकों के तत्वों का समन्वय रूप मिलता है। गिरीश रस्तोगी के शब्दों में - "जयशंकर प्रसाद के नाटकों की अपनी रंगभाषा है। इनके नाटकों की भाषा अनुभवों से उपजी है और अनेक बिम्बों का निर्माण करती हुई सभी सीमाओं को तोड़ती हुई समय और समाज के लिए प्रेरणा-स्रोत बनती है। प्रसाद के नाटकों के शब्द प्रयोग मात्र किसी काल की सम्पत्ति नहीं है बल्कि उनमें अनन्त ऊर्जा के स्रोत हैं। उनके नाटकों की भाषा भारतीय रसानुभूति व पाश्चात्य द्वन्द्व से उपजी है।"[23]

नाट्यभाषा के एक अभिन्न अंग के रूप में गीत-संगीत को ले सकते हैं। प्रसाद का संगीत उनके नाटक के चरित्रों के मन के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त करनेवाला है। प्रसादजी के नाटकों का संगीत भारतीय पद्धति के अनुसार किया था। उनके गीत थके हुए मन की पीड़ा, वेदना और प्रेम की कड़वी भावनाओं की सबसे सफल अभिव्यक्ति हैं। स्वदेश की महिमा, आह्वान की रीति, उनके गीतों का प्राण है। जैसे -

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहूँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ-विभा पर-नाच रही तरूशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर- मंगल कुंकुम सारा।

लघु सुरधनु से पंख पसारे-शीतल मलय समीर सहारे।

उड़ते खग जिस ओर मूँह किये- समझ नीड़ निज प्यारा।

बरसाती आँखों के बादल-बनते जहाँ भरे करुणा जल।

लहरें टकरातीं अनन्त की- पाकर जहाँ किनारा।

हेम-कुम्भ ले ऊषा सवेरे- भरती दुलकाती सुख मेरे।

मदिर ऊँघते रहते जब-जग कर रजनी भर तारा।"[24]

प्रेम की बेचैनी की अभिव्यक्ति को उनका गीत स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया है। 'स्कन्दगुप्त' के देवसेना का गीत इसका उदाहरण है।

"भरा नैनों में मन में रूप।

किसी छलिया का अमल अनूप।

जल-थल, मारुत, व्योम में, जो छाया है सब ओर।

खोज-खोजकर खो गई मैं, पागल-प्रेम विभोर।..."[25]

यौवनावस्था की असली अभिव्यक्ति में उनका गीत सफल हुआ है। 'ध्रुवस्वामिनी' में कोमा का गीत इसका उदाहरण है-

"यौवन! तेरी चंचल छाया

इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस तू है लाया।

मेरे प्याले में मद बनकर कब तू छली समाया।

जीवन-वंशी के छिद्रों में स्वर बन कर लहराया।"[26]

उन्होंने गीतों द्वारा पात्रों के मन की पीड़ा या वेदना को जीवन्त बनाया है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग नाटक को प्रतिभाशाली बनाती है, इसीतरह प्रसाद ने पात्रानुकूल गीत का प्रयोग करके उनके नाट्यभाषा को अग्रणी बना दिया है। वेश्या पात्र श्यामा द्वारा गायी हुई गीत इसका उदाहरण है-

"सुधा-सलिल से मानस, जिसका पूरित प्रेम-विभोर।
नित्य कुसुममय कल्पद्रुम की छाया है इस ओर।"[27]

अंतर्मन के भावों को प्रकट करने में गीत का प्रयोग नाटक में अभिनयों से ज़्यादा काम आता है।

"चलत चलत हारे
विकट विपिन में दुःख के मारे।"[28]

राष्ट्रीय भावना एवं देश के महिमा वर्णन के लिए गीत का प्रयोग बहुत सहायक हुआ है -

"रह सकती है भला कहीं भी एक स्यान में दो तलवार?
रहते देखे एक जगह क्या कमी किसी ने सिंह सियार?
इस हिंदोस्तान का हूँ मैं अगर वाक़ई शाहंशाह,
तो कैसे रह सकता हूँ चुप, बिना किए मैं उसे तबाह?"[29]

पद्य का प्रयोग उनकी नाट्यभाषा की और एक विशेषता है। उन्होंने पद्य का प्रयोग केवल साधारण बातचीत एवं घटना विवरण के लिए नहीं, नाटक में प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यंग्यात्मक कल्पना का समावेश किया है। व्यंग्य के प्रयोग में लक्षणा, व्यंजना आदि शब्द शक्तियों के प्रयोग नाटक के संवादों को उत्कर्ष पर पहूँचाते हैं।

"प्रतिहारी : (प्रवेश करके घबराहट से) भट्टारक इधर आये हैं क्या?

ध्रुवस्वामिनी : (व्यंग्य से मुस्कुराती हुई) मेरे अंचल में तो छिपे नहीं हैं। देखो किसी कुन्ज में ढूँढो।"[30]

नाट्यभाषा का अभिन्न अंग है संवाद। नाटक आकार से बहुत बड़ा है, जो कागज़ से लेकर रंगमंच तक फैली हुई है। संवाद नाट्य शरीर है। नाटक अपने मूल रूप में संवादों से अभिव्यक्त होता है। प्रसाद जी के नाटकों में कथानकों को आगे बढ़ाने में और पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को उभारने में उनके संवाद योजना सफल हुई है। प्रसाद के संवादों में काव्यात्मकता की झलक देख सकती है। लेकिन उनकी काव्यात्मकता संस्कृत नाटकों की काव्यात्मकता से भिन्न है। प्रसाद पर तत्कालीन पारसी रंगमंच का प्रभाव होने के कारण उनके

प्रारंभिक नाटकों में पारसी नाटक के संवादों का प्रभाव है। इससे हटकर अपने प्रौढ़ नाटकों में उन्होंने संवाद कला एवं भाषा में एक परिपक्व और स्वतंत्र शैली विकसित की। "प्रसाद के नाटकों में विविध प्रकार के संवाद पाए जाते हैं यथा 1) साधारण संवाद, 2) लाक्षणिक संवाद, 3) दार्शनिक संवाद, 4) एकांत कथन। नाटक के संवादों का सुबोध, संक्षिप्त, व्यावहारिक, मार्मिक एवं संवेगात्मक होना आवश्यक है। प्रसाद के नाटकों के अधिकांश संवाद इन विशेषताओं से युक्त हैं।"[31]

सरल एवं छोटे-छोटे संवादों का प्रयोग भी उनके नाटकों में देख सकते हैं-

"कल्याणी	:	(सिंहरण से) - चलो हमारे शिविर में ठहरो। फिर बताया जाएगा।
चन्द्रगुप्त	:	मुझे कुछ कहना है।
कल्याणी	:	अच्छा, तुम लोग आगे चलो।
चन्द्रगुप्त	:	इस युद्ध में पर्वतेश्वर की पराजय निश्चित है।
कल्याणी	:	परन्तु तुम कौन हो- मैं तुमको पहचान....
चन्द्रगुप्त	:	मगध का संपेरा।
कल्याणी	:	हूँ। और भविष्यवक्ता भी।
चन्द्रगुप्त	:	मुझे मगध के पताका के संम्मान की ...."[32]

बोलचाल की भाषा में यथार्थ का गुण अधिक है। प्रसाद जी ने अपने नाटक में बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग किया है। स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक में भटार्क और शर्वनाग का संवाद इसका उदाहरण है-

"भटार्क	:	कौन? (प्रवेश करके)
शर्वनाग	:	नायक शर्वनाग।
भटार्क	:	कितने सैनिक हैं?
शर्वनाग	:	पूरा एक गुल्म।
भटार्क	:	अन्तःपुर से कोई अज्ञा मिली है?
शर्वनाग	:	नहीं।"[33]

इसीतरह बद्रीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' नाटक में भी ऐसी बातचीत मिलती है।

"पृथ्वी	:	(सोचकर) जहाँपनाह यही चाहते हैं न कि महारानी दुर्गावती जहाँपनाह को अपना हितैषी समझे?
अकबर	:	हाँ, और अपना राज मुझे दे, फिर चाहे मैं उसको वापस ही दे दूँ।
पृथ्वी	:	तो जहाँपनाह ने इसके लिए क्या उपाय सोचा है?
अकबर	:	तलवार।"[34]

प्रसाद ने पात्र के मन के अंतर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करने के लिए स्वगत कथन तथा आत्म कथन का प्रयोग किया। प्रसादयुगीन नाटककारों ने अपने नाटकों के पात्र के मानसिक संघर्षों, चिंताओं, एवं अपनी योजनाओं को स्वगत कथन द्वारा प्रस्तुत करके नाट्यभाषा के इस पारंपरिक रूप का पालन किया। प्रसाद के नाटकों में स्वगत कथन का बाहुल्य था। उन्होंने पात्रों के आंतरिक व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिए और पात्रों के चरित्र वैचित्र्य को उद्घाटित करने के लिए स्वगत का प्रयोग किया है-

"कल्याणी : मगध-सेनापति! तुम कायर हो।

सेनापति : तब जैसी आज्ञा हो। (स्वगत) स्त्री की अधीनता वैसे ही बुरी होती है, तिस पर युद्धक्षेत्र में! भगवान ही बचावें।"[35]

सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रसाद ने अपने 'विशाख' नाटक में स्वगत कथन का विरोध किया। फिर भी उन्होंने अपने नाटकों में स्वगत का प्रयोग किया। क्रिया व्यापार से उतनी तीक्ष्णता के साथ प्रकट न करनेवाले मन के हरेक सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने में स्वगत का प्रयोग बहुत सहायक हुआ है। प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वगत का प्रयोग किया है केवल एक घटना की सूचना देने के लिए नहीं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में इसका एक उदाहरण है -

"चाणक्य : पिता का पता नहीं, झोंपड़ी भी न रह गयी। सुवासिनी अभिनेत्री हो गयी - सम्भवतः पेट की ज्वाला से। एक साथ दो-दो कुटुम्बों का सर्वनाश और कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है! क्या इसीलिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था। मगध ! मगध! सावधान! इतना अत्याचार! सहना असंभव है। तुझे उलट दूँगा...।"[36]

प्रसाद ने स्वगत के साथ मंचीय तत्वों का भी समन्वय करके इसको विशाल अर्थ प्रदान किया।

प्रसादयुगीन नाटक संवाद एवं भाषा की दृष्टि से सफल हैं। किन्तु संवाद में स्वगत कथन एवं पद्यमय संवादों का प्रयोग दृष्टिगत होती है। इस युग की नाट्यभाषा की और एक विशेषता 'भाषण शैली' का प्रयोग है। नाटक के पात्र दर्शकों को संबोधित करके भाषण कर्ता के रूप में बातें करते हैं। इसका उदाहरण सेठ गोविन्ददास एवं बद्रीनाथ भट्ट आदि के नाटकों में हम देख सकते हैं।

"भाईयों और बहनों। इस नगर की अनेक बातों में परिवर्तन की आवश्यकता है, उनमें से एक धनियों और निर्धनों, पठितों, अपठितों, समाज में किसी भी कारण से उच्च स्थान है रखनेवाले और पतित व्यक्तियों का परस्पर भेदभाव...।"[37]

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग नाट्येतर विधाओं में होता है। लेकिन सेठ गोविन्ददास ने अपनी नाट्यभाषा में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। "छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरे हुए वे गाँव, ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की छाया में बने हुए नन्हे-नन्हें वहाँ के झोंपड़ें, शांत नीरव... बैल और भैंसे तथा उनके गले में टन-टन बजनेवाली घंटियाँ, सब स्वाभाविक अत्यन्त स्वाभाविक वस्तुएँ हैं।"[38]

प्रसादयुगीन नाटकों के संवाद पात्र एवं भावों के अनुकूल हैं। युग का प्रभाव भाषा एवं संवाद में स्पष्ट रूप में दिखाई दे रहा है। वातावरण की सृष्टि के लिए, पात्रों के मन के भावों को स्पष्ट करने के लिए और कथानक को आगे बढ़ाने के लिए गीतों का प्रयोग नाटक में अनिवार्य है। इस युग के नाटकों में गीतों की भरमार के कारण नाटक के कथानक में बाधा होती है। बद्रीनाथ भट्ट का नाटक 'दुर्गावती' इसका उदाहरण है।

ध्वनि एवं प्रकाश योजना से प्रसाद ने अपनी नाट्यभाषा को अग्रणी बना दिया है। मन की भावनाओं, हृदय की पीड़ाओं एवं युद्ध जैसी भीषण अवस्थाओं को ध्वनि एवं संगीत के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

"नेपथ्य में घोर गर्जन"[39], "नेपथ्य में रण-वाद्य और कोलाहल।"[40] इसीतरह प्रकाश व्यवस्था एवं संगीत के माध्यम से 'फ्लैश बैक' का

प्रस्तुतीकरण बड़ी सुन्दरता से किया है। उनके पात्र दृढ़ एवं संवेदनशील मानसिकता के साथ गुज़रनेवाले थे। इसलिए नाटक में आंगिक एवं वाचिक अभिनय के साथ सात्विक अभिनय का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

भाषा के संदर्भ में प्रसाद ने संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा को कृत्रिम मानते हुए हिंदी नाटक में इस प्रवृत्ति का विरोध किया। उनका कहना है कि - "एक मत यह है कि भाषा स्वाभाविकता के अनुसार पात्रों की अपनी होनी चाहिए और इस तरह कुछ देहाती पात्रों से उनकी अपनी भाषा का प्रयोग कराया जाता है। मध्यकालीन भारत में जिस प्राकृत का संस्कृत से सम्मेलन रंगमंच पर कराया गया था वह बहुत कुछ परिमार्जित और कृत्रिम-सी थी। सीता इत्यादि भी संस्कृत बोलने में असमर्थ समझी जाती थीं। वर्तमान युग की भाषा-संबंधी प्रेरणा भी कुछ-कुछ वैसी ही है। किंतु आज यदि कोई मुगल कालीन नाटक में लखनवी उर्दू मुगलों से बुलवाता है तो वह भी स्वाभाविक या वास्तविक नहीं है। फिर राजपूतों की राजस्थानी भाषा भी आनी चाहिए। यदि अन्य असभ्य पात्र हैं तो उनकी जंगली भाषा भी रहनी चाहिए। और इतने पर भी क्या वह नाटक हिंदी का ही रह जायगा। यह विपत्ति कदाचित् हिंदी नाटकों के लिए ही है।"[41] उन्होंने नाटक में पात्रों के भावानुकूल भाषा पर ज़ोर दिया। "मैं तो कहूँगा कि सरलता और

क्लिष्टता पात्रों के भावों और विचारों के अनुसार भाषा में होगी ही और पात्रों के भावों और विचारों के ही आधार पर भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए।"[42]

उन्होंने हरेक पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के अनुकूल कठिन एवं सरल भाषा का प्रयोग किया है-

"चाणक्य : राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत हो कर जीता है..।"[43]

बिम्ब प्रधान भाषा उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है। उनके नाटक के गीत भी बिम्ब प्रधान है। प्रसाद की नाट्यभाषा पर लगाया गया आरोप यह है कि काव्यात्मकता के आधिक्य के कारण उसमें अनाटकीयता एवं एकरसता है। उनके कवि होने के कारण उनकी भाषा में भावुकता देखने को मिलती है। इसके साथ-साथ भाषा की शोभा बढ़ाने के लिए कभी-कभी तुकांत शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

"अभी मेरी मूँछ काली है। आँखों में लाली है।"[44]

उन्होंने अपने नाटकों में इतिहास प्रमुख घटनाओं को आधार बनाया। इसी कारण से उनके नाटकों में तत्सम शब्दों का बाहुल्य देख सकता है, जो वातावरण को निर्मित करने में सहायक है। इसके साथ-

साथ उन्होंने तद्भव, देशी, विदेशी, एवं बोलचाल के शब्द और मुहावरों का भी प्रयोग किया।

निष्कर्षत: प्रसाद एवं प्रसादयुगीन नाटककारों ने हिंदी नाट्यक्षेत्र में भाषा की दृष्टि से नई दिशा प्रदान की। प्रसाद युगीन नाटककारों में प्रसाद के नाटकों का प्रभाव अवश्य पड़ा। अभिनय की दृष्टि से प्रसाद के समकालीन नाटककारों की नाट्यकला में क्रमिक विकास हुआ है।

प्रसाद के पश्चात कुछ नाटककारों ने प्रसाद की नाट्यकला के प्रतिक्रियास्वरूप नाटक लिखने लगे। वे प्रसादोत्तर नाटककारों के अंतर्गत आ जाते हैं।

2.1.5 प्रसादोत्तर युगीन नाट्यभाषा

प्रसादोत्तर युगीन नाटक भारतेन्दु एवं प्रसाद युग से अलग होकर एक नई दिशा में बहने लगे। इस युग के नाटककारों ने नई नाट्यशैलियों को अपनाया। यथार्थवादी दृष्टि से प्रेरित होकर उन्होंने नाटकों में सामाजिक यथार्थ को उसी रूप में चित्रित किया। इस युग में निम्नजाति के लोगों एवं शोषितों को अधिक महत्व देने लगा। पाश्चात्य नाट्यशैली का प्रभाव भी उस युग की नाट्यशिल्प में बदलाव लाया। प्रसादोत्तर नाटककारों में से अधिकतर रचनाकार प्रसादयुग में लिखनेवाले

थे। लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगदीशचन्द्र माथुर, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, जगन्नाद प्रसाद मिलिन्द, विष्णुप्रभाकर, गोविन्द वल्लभ पंत आदि प्रसादोत्तर नाटककारों में प्रमुख हैं।

इस काल में ऐतिहासिक, पौराणिक एवं समस्या प्रधान नाटकों की भरमार थी। इनमें समस्या प्रधान नाटक पाश्चात्य नाटकों से प्रभावित हैं। डॉ. देवेन्द्रकुमार गुप्ता के अनुसार- "पाश्चात्य नाटककारों इब्सन, शॉ, गाल्सवर्दी आदि की प्रेरणा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि समस्या नाटकों का हिंदी में सृजन है। ...... समस्या नाटकों को अध्ययन की सुविधा के लिए दो वर्गों में बाँटा जा सकता है- 1) वैयक्तिक समस्या प्रधान नाटक और 2) सामाजिक राजनीतिक समस्या प्रधान नाटक।"[45] प्रसादोत्तर नाटककारों ने ऐतिहासिक नाटकों द्वारा जनता में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक जाग्रता पैदा किया। ऐतिहासिक कथा को आधार बनाकार लिखे गए नाटक जनता में देशभक्ति की भावना जगाने में भी सहायक हुए। इसीतरह पौराणिक नाटक नैतिक उद्देश्य से लिखे गए नाटक हैं। इनमें संस्कृत नाटकों का प्रभाव अधिक देख सकते हैं। पौराणिक धारा के नाटक पुराणों में वर्णित घटनाओं एवं कथाओं से ओतप्रोत हैं।

इस युग में समाजवादी धारा विकसित हुई। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपनाए गए सत्याग्रह और हड़तालों ने मज़दूरों और किसानों में चेतना जगाई और उन्हें आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ एकजुट किया। आज़ादी से पहले भारत की आर्थिक स्थिति अपने सबसे निचले स्तर पर पहूँच गई थी। प्रसादोत्तर नाटक में इसकी स्पष्ट झलक मिलती है। उस समय कानूनी स्तर पर अनेक समाज सुधार तथा समाज में अनेक अधिकारों की स्थापना से महिलाओं के स्वतंत्र व्यक्तित्व को सम्मान मिला। समाज के प्रबुद्ध वर्गों ने छुआछूत, जातिवाद एवं सांप्रदायिकता जैसी अनीतियों के खिलाफ अभियान चलाकर शोषितों एवं निम्न जाति के लोगों की स्थिति में सुधार लाने के लिए कई प्रयास किए। इन्हीं परिस्थितियों का प्रभाव प्रसादोत्तर नाटकों में देखा जा सकता है।

इस युग के नाट्य लेखन में समसामयिक परिवेश के बदले हुए परिप्रेक्ष्य की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस युग के नाटककारों ने पात्र योजना की दृष्टि से परंपरागत मान्यताओं को तोड़कर नई दृष्टि अपनायी। नाटक के पात्र अधिक जीवंत होने लगे। मानसिक संघर्षों की सहज अभिव्यक्ति के कारण होनेवाले परिवर्तन का स्वरूप इन नाटकों को पूर्ववर्ती परंपरा से अलग करता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र और उदयशंकर भट्ट ने अपने प्रभावपूर्ण नाटकों में पात्रों का चरित्रांकन

मनोविश्लेषणात्मक ढंग से किया गया है। उदयशंकर भट्ट के 'अम्बा' नाटक के पात्र सत्यवती का कथन मन की अंतर्द्वन्द्व को स्पष्ट करने वाला है-

"सत्यवती- ... परन्तु उस समय मैं राजमद की भूखी थी, यौवन की न बुझनेवाली प्यास ने मुझे बेचैन कर दिया था। कुछ ही दिनों बाद मेरे हृदय में उस अज्ञान के प्रति तिरस्कार की, उस मद के प्रति घृणा की, उस पतन के प्रति विषाद की भावनाएँ तीव्र-तीव्रतर होतीं गईं। पर नहीं - शास्त्र कहता है स्त्री को पति के प्रति कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है। मैं अब कुछ न कहूँगी- केवल आत्मग्लानि, परिताप ही मेरे सहचर हैं। जबरदस्ती मुझसे कराये गये पापों की अग्नि में धुआँ ही धुआँ है। उसी में धक् धक् करके दम घुट रहा है ओह, यदि कहीं...।"[46]

प्रसादोत्तर नाटककारों ने प्रभावकारी संवादों के माध्यम से अपनी नाट्यकला को अग्रणी बना दिया। उन्होंने संवाद में मनोविश्लेषणात्मक ढंग को अपनाया। अधूरे संवादों का प्रयोग पात्रों के अंतर्मन के भावों को उद्घाटित करने में सहायक होता है। भट्ट जी के 'सागर विजय' नाटक के 'त्रिपुर' एवं 'कुन्त' दोनों का संवाद इसका उदाहरण है-

"त्रिपुर : बर्हि .....(घबराकर) बर्हि को? तुम जाओ कुन्त ! लौट जाओ।

कुन्त : परन्तु वह तो.....।"[47]

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी इसी मनोविश्लेषण पद्धति को अपनाकर उनकी नाट्यभाषा को अग्रणी बना दिया है।

"कौमदी : (जैसे उसकी बात न सुनकर) किसी कुमारी को नहीं जीत लिया उस एक ने...... पर उसे कोई न जीत सकी ..... गोपियों का वह अकेला गोपाल .... दक्षिण का वह असाधारण नवयुवक...... कितना बल है उसमें। आँखों में न लालसा है और न मन में कोई कामना। ऐसा ही रहा होगा वह गोपाल.... इससे भी बड़ा..... (उसकी आँखों में विस्मय का भाव भर जाता है।)"[48]

संवाद में हाव-भावों एवं क्रिया-कलापों द्वारा पात्र के मनोदर्द को उद्घाटित करने में इन साहित्यकारों ने सफल हुआ।

"विशालाक्षी : .... उठ मेरे लाल, उठ। (करवट बदलकर लापरवाही से बालक की चादर हटाती है और बच्चे को न पाकर एक दम सुन्न रह जाती है) हैं, यह क्या। मेरे सर्वस्व को...। (कमज़ोरी और अचानक दुख के कारण बेहोश हो जाती है, कुछ देर बाद होश आने पर) कौन ले गया? (सिर पकड़ बैठ जाती है) मेरा प्रिय निश्वास कौन चुरा ले गया? हाय! (पागल होकर कुटिया के बाहर झुटपुटे में ठोकर खाकर एक पत्थर पर गिर कर बेहोश हो जाती है। होश में आकार फिर गुमसुम सी खड़ी होकर देखने लगती है,

उसकी आँखें प्रचण्ड अग्नि सी चमक रही हैं, सब कुछ देखती हुई भी कुछ नहीं देख पाती, शरीर वज्र सा कठोर हो गया है, चेतना लुप्त हो गई है) हा...हा....तू उजियाले में छिप गया! सागर।....."[49]

पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करके प्रसादोत्तर नाटककारों ने अपने नाट्य संसार को सार्थक बना दिया है। इस युग के ऐतिहासिक राष्ट्रीय नाटककारों में प्रमुख है हरिकृष्ण प्रेमी। उनके ऐतिहासिक नाटकों के कई पात्र मुसलमान है। इसीलिए उन्होंने उर्दू एवं फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है और हिंदू पात्र द्वारा शुद्ध हिंदी का प्रयोग किया है। इसी कारण से उनके नाटकों के कथोपकथन में स्वाभाविकता की झलक अधिक है।

"राजयोगी : बेटी, तुमको कब से भवानी अपने मन्दिर में बुला रही है। तुम तो नित्य उसके मन्दिर से पूजा करने आती थी। भवानी को इस बात का दुःख है कि तुम दैत्य के दल में जा मिली हो। वह दैत्यों पर शस्त्र चलाने में सक नहीं करती, किन्तु तुमने तो कितनी ही बार भक्ति से गद्गद होकर अपने आँसुओं का हार उसे पहनाया है। वह तुम्हारे रूप को नहीं भूल पाती....... बेटी। बोलो, कब तक तुम भवानी ने विद्रोह करनी रहोगी।"[50]

इसी तरह लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'राक्षस का मंदिर' नाटक में अंग्रेज़ी संवादों का प्रयोग देखने को मिलता है। रामलाल और मुनीश्वर ने कभी-कभी संवादों के बीच अंग्रेज़ी भाषा का भी प्रयोग किया है-

"रामलाल : Is this your philosophy fool?

मुनीश्वर : Yes where is the inconsistency?"[51]

भाषा में काव्यात्मकता का प्रयोग प्रसादोत्तर नाटककारों में भी देख सकता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट आदि नाटककारों ने काव्यात्मक शब्दों का प्रयोग अधिक किया है।

"अम्बा : (इधर उधर देख कर) पिता जी, कल्पना का नाम संसार है। संसार के तबले पर प्रातःकाल के पवन का ठेका लगते ही उषा निशा की माँगों में सुनहला इंगुर लगाकर लजीली आँखों से उसकी ओर निहारती है- उस समय कैसा मधुर...।"[52]

प्रसादोत्तर नाटककारों ने नाट्यभाषा की नई शैलियाँ अपनायी हैं। स्वगत कथन, छोटे एवं लंबे संवाद और कथानक की गति को और प्रभावी बनकर आगे-बढ़ाने के लिए गीतों का प्रयोग आदि से नाट्यभाषा को समृद्ध किया है। जैसे-

"छाया : बर्हि।

दुर्दम : बर्हि ! बाहु की छोटी रानी !

बर्हि : वही !

दुर्दम : क्या चाहती है ! (उसके रूप को देखने लगता है)

बर्हि : कुछ भी नहीं ! तूने मुझे बुलाया था।

दुर्दम : मैं राजा हूँ।

बर्हि : जानती थी !

दुर्दम : क्या?

बर्हि : राजा था !

दुर्दम : अब क्या जानती है?

बर्हि : डरपोक, कायर?"[53]

छोटे-छोटे संवाद भी अधूरे संवादों की तरह अर्थ संपन्न है।

प्रसादोत्तर युग में समस्या नाटकों का अधिक्य था। इन नाटकारों ने यथार्थवादी जीवन से उत्पन्न मुद्दों को अभिव्यक्त करने के लिए नाट्यशिल्प में बदलाव लाया। यथार्थवादी समस्या नाटककारों ने जीवन से जुड़ी हुई सत्यों को उसी तरह प्रस्तुत किया। इसमें किसी कल्पना एवं भावुकता का कोई स्थान नहीं है। नाटक की शैली में भी परिवर्तन आया। नाटक की भाषा पूरी तरह बोलचाल की भाषा बन गयी। यथार्थ जीवन का चित्र यथार्थ के निकट की भाषा से अधिक सार्थक होता है। इसलिए रंगमंच की दृष्टि से देखें तो दर्शकों को ऐसा लगेगा कि यह हमारे ही

जीवन का एक हिस्सा है या हमारे आसपास के जीवन का चित्र है। मंच पर प्रकाश योजना में नई तकनीकों को अपनाया गया। ये नाटक को वास्तविकता की ओर अधिक ले गये। दर्शकों को प्रभावित करने में यह सहायक हुआ। दशरथ ओझा ने समस्या नाटक के आधुनिक जन्मदाता के रूप में लक्ष्मीनारायण मिश्र को माना है। यूरोपीय यथार्थवादी नाटक के प्रवर्तक इब्सन और बर्नाड़ शॉ से प्रभावित होकर मिश्र जी ने हिंदी में समस्या नाटकों का प्रणयन किया। पाश्चात्य नाटककारों ने पुरानी मान्यताओं को तोड़कर नए की प्रतिष्ठा की। उन्होंने नाटक के अंक विधान में बदलाव लाया। अंक पाँच से तीन हो गए। इसी तरह मिश्र जी ने अपने नाटक 'सिंदूर की होली' में तीन अंक की योजना की गयी।

पाश्चात्य समस्या नाटकों के प्रबल प्रभाव होते हुए भी हिंदी नाटकों से गीतों को पूर्णतः बहिष्कृत नहीं किया जा सका। इन नाटककारों ने अपने नाटकों में सीमित संख्या में गीतों का प्रयोग किया। सेठ गोविन्ददास का कथन है- "योरोप के नाटककारों के सदृश्य गायन, नृत्य और कविता का नाटक से सर्वथा बहिष्कार करने की भी मेरे मत से आवश्यकता नहीं है।"[54] सामाजिक समस्या प्रधान नाटककारों में सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावन लाल वर्मा और हरिकृष्ण प्रेमी

प्रमुख हैं। वैयक्तिक समस्यामूलक नाटककार के रूप में लक्ष्मीनारायण मिश्र का नाम उल्लेखनीय है।

गीतों का प्रयोग कथानक में भावात्मकता अधिक लाने में सहायक है। लेकिन गीतों की अधिकता कथानक की गति में बाधा ड़ालती है। वातावरण का सृजन करने में गीत का योगदान महत्वपूर्ण है। कभी-खभी नाटक में गीत भाषा से परे भावों को उद्वेलित करने में सहायक सिद्ध होती है। प्रसादोत्तर नाटक में पूर्व युग की भाँति पारसी रंगमंच से प्रभावित गीतों का प्रयोग नहीं दिख पाती। हरिकृष्ण प्रेमी स्वतंत्रता से पूर्व एवं बाद में नाटक लेखन किया। प्रसाद जी का प्रभाव उनमें देखने को मिलता है। इसलिए दोनों युग की झलक उनके नाटकों में देख सकती है। नाट्यभाषा के तौर पर उन्होंने अपने नाटकों में गीतों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। "राष्ट्रीय नाटकों में गीतों का प्रयोग उत्साह का भाव लाने के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है। हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों से हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध किया तथा उनमें आवश्यकतानुसार भक्तिगीत, देशप्रेम तथा राष्ट्रीय भावों से युक्त कथानक, घटना, प्रसंग अनुसार प्रणय गीत, झण्डा गीत आदि का समावेश किया। ओजपूर्ण गीतों का बाहुल्य प्रेमी के नाटकों में स्वाभाविक ही था।"[55]

भारतेन्दु और प्रसाद युग में प्रचलित भक्तिगान का प्रयोग हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने नाटकों में किया है-

"जयति-जयति जय जननि भवानी!
नर-मुंडों की मालावाली,
क्यों है तेरा खप्पर खाली,
माँ तेरे नयनों की लाली-
भरे राष्ट्र में नई जवानी!..."[56]

पात्रों के मन के अपमान, वेदना, क्रोध आदि को अभिनयों से ज़्यादा प्रभावशाली बनने के लिए गीत का योगदान महत्वपूर्ण है।

प्रसादोत्तर नाटककारों ने निबन्धात्मक एवं विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है। सेठ गोविन्ददास के नाटकों में इसके उदाहरण मिलते हैं। उनके 'प्रकाश' नामक तीन अंकीय नाटक में पात्रों की वेशभूषा तथा रूप संबन्धी विवरण लंबी रूप में किया गया है। जैसेः "कल्याणी का दूसरी ओर से प्रवेश। कल्याणी लगभग चालीस वर्ष की दुबली, लम्बी और गोरे रंग की स्त्री है। मुँह पर शोक-चिह्न दिखायी देते हैं। बड़ी-बड़ी आँखों के चारों ओर गढ़ढे पड़ गए हैं। शरीर पर सफ़ेद रेश्मी सादी साड़ी और चोली है। हाथों में काँच की चार-चार और मोतियों की दो-दो चूड़ियाँ है......।"[57] निबन्धात्मक शैली का प्रयोग 'हर्ष' नाटक में राज्यश्री के

चितारोहण के समय पर मिलता है। उन्होंने नाटक में सिनेमा तकनीक का प्रयोग किया। उनकी मंचीय दृष्टि नाटक के परे है। 'गृहस्थ से भिक्षु' नाटक में इसका संकेत किया है।

संवाद में भाषण शैली का भी प्रयोग देखा जा सकता है। जैसे -

"प्रकाशचन्द्र : सज्जनो। समाज में धनी और निर्धनों का होना एक स्वीकृत सिद्धान्त माना जाता है, परन्तु क्या ऐसा समाज नहीं हो सकता जहाँ इस प्रकार का भेद-भाव न हो, या कम से कम इस सीमा को न पहूँच गया हो ?.. "[58]

प्रसादोत्तर युग में भी लंबे-लंबे कथनों का प्रयोग मिलता है। कभी-कभी लंबे-लंबे संवादों के प्रयोग नाटक के सुगम गति में अवरोध उठा करते हैं। लंबे संवादों के साथ-साथ इन नाटककारों ने लंबे-लंबे स्वगत कथन का भी प्रयोग किया है। स्वगत कथन पात्रों के अंतर्मन की स्थितियों को पात्र जो तीव्रता में अनुभव करते हैं उसी तीव्रता में दर्शकों तक पहुँचाने में अधिक सहायक है। उदयशंकर भट्ट ने 'सागर विजय', 'विद्रोहिणी अम्बा' आदि नाटकों में लंबे-लंबे स्वगत कथन का प्रयोग किया है। उनका स्वगत आनेवाली घटनाओं के वर्णन करने के लिए एवं बीते हुए कार्य के वर्णन के लिए हुआ है -

"बर्हि : (क्रोध से) क्या कोई उपाय अब नहीं बचा! उस दिन से आज तक एक भी उपाय हाथ नहीं आया! आशा का विष अब भी नहीं फैला क्या? (ज़ोर से पत्ता मसलती हुई) तू वृक्ष के अंक से लिपट कर मुझे जलाना चाहिए है? ...... मैं आज वही धुँआ देखना चाहती हूँ। मैं आज वही आग लगाऊँगी। जलाऊँगी.. जल...। (तीव्र दृष्टि से देखने लगती है)।"[59]

प्रसादोत्तर अन्य नाटककारों की तुलना में हरिकृष्ण प्रेम के नाटकों में स्वगत कथन का प्रयोग बहुत कम है।

2.1.6 स्वातंत्र्योत्तर युगीन नाट्यभाषा

हिंदी यथार्थवादी नाटक ने स्वतंत्रता के बाद के नाटक साहित्य को आधार प्रदान किया और इसकी विरासत एवं प्रतिक्रिया ने नए हिंदी नाटक को नई दिशाएँ प्रदान कीं। बाद में पश्चिमी नाट्य साहित्य ने यथार्थवाद के विरोध करके और उसके नए स्वरूप की तलाश की। उस समय प्रतीकवाद एवं अभिव्यक्तिवाद का उदय हुआ। प्रतीकवाद के फलस्वरूप भाषा में परिवर्तन आया। भाषा में आत्मनिष्ठता,सृजनात्मकता एवं काव्यात्मक झलक भी आयी। प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करने की क्षमता भाषा की सबसे बड़ी विशेषता बन गई। अभिव्यक्तिवादियों ने अवचेतन पर बल देकर एक ऐसी भाषा का निर्माण किया जिसमें पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति, पद का लोप, खंडित अभिव्यक्ति एवं असंगति आदि

का प्रयोग हुआ। अस्तित्ववाद के फलस्वरूप साहित्य में विसंगतवाद का उदय हुआ। पाश्चात्य नाट्य साहित्य का विकास इसी क्रम में हुआ। ये सब पाश्चात्य नाट्य साहित्य में पहले से भी हुए। बाद में हिंदी नाट्यसाहित्य में भी इसका प्रभाव पड़ा। विशेषकर 1950 के बाद के नाटकों में।

स्वतंत्रता के बाद भारत के लोगों के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में कई तरह का बदलाव आया। रमेश कुंतल मेघ के शब्दों में "सन् 1940 से सामाजिक रूपान्तर का प्रखर प्रभाव लक्षित होने लगता है... अब आर्थिक योजना आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, सांस्कृतिकीकरण और पाश्चात्यीकरण की प्रक्रिया को एक साथ शुरू करती है।"[60] इस समय के नाटक का मुख्य विषय है - स्त्री स्वतंत्रता, भ्रष्टाचार, आर्थिक अभाव, महंगाई, बेकारी, मूल्यच्युति आदि। जब आज़ादी के बाद देश का संविधान लागू हुआ तब अर्थ व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ आरंभ कीं। लेकिन जनसंख्या की बढ़ाई के कारण आर्थिक स्थिति आश्वस्त रूप न धारण की। जनसंख्या का बढ़ाव महंगाई का कारण बन गया।

मध्यवर्गीय जीवन का चित्र इस समय के नाटकों द्वारा सफल ढंग से किया गया है। सामाजिक कुरीतियों पर तीखे स्वर में आक्रोश करके

इससे मुक्ति पाना इस समय के नाटकों का मुख्य लक्ष्य था। शिल्पगत दृष्टि से देखें तो इस समय के नाटकों में पूरी तरह बदलाव आ गया। परंपरागत शैली को छोड़कर नए को अपनाया।

1950 से 1960 तक के समय में ऐसे कुछ नाटककारों की नाट्य रचनाएँ हमारे सामने आती हैं, जो नवीन रंगदृष्टि एवं तत्कालीन युगबोध को प्रमुखता देकर नाटक एवं रंगमंच को संपुष्ट बना दिया है। इनमें प्रमुख हैं- जगदीश चन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश और लक्ष्मीनारायण लाल। इतिहास एवं पुराण का जो रूप पूर्ववर्ती नाटकों में दिखाई देता है, वह इन नाटककारों की रचनाओं में गायब है। इन्होंने इतिहास पुराण से प्रतीक लेकर आज की समस्याओं को प्रभावी बना दिया है। जगदीश चन्द्र माथुर ने कोणार्क की भूमिका में इसी तरह कहा है कि "इतिहास का सहारा मैंने अल्प मात्रा में ही लिया है, फिर भी इस नाटक को पूर्णतया अनैतिहासिक नहीं कहा जा सकता।"[61]

प्रसाद के बाद नाटक के क्षेत्र में जगदीशचन्द्र माथुर ने अपनी एक अलग पहचान बना लिया है। उनके नाटक विषयवस्तु, रंगमंचीयता, प्रबल भावात्मक क्षमता एवं भाषा की सृजनात्मकता के कारण नाटकीय क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। उनका पहला नाटक है 'कोणार्क' (1951)। स्वतंत्रता के बाद के प्रयोगशील नाटक 'नया नाटक' नाम से जाने जाते

हैं। कोणार्क अपनी विशेषताओं के कारण 'नया नाटक' है। तीन अंकोंवाले इस नाटक में कुल मिलाकर ग्यारह पात्र हैं। पात्रों की सजीवता के लिए उन्होंने एक हद तक मनोविज्ञान का सहारा लिया है। उन्होंने कोणार्क के बाद 'शारदीया' (1953) नाटक भी लिखे। उनके नाटक की भाषा प्रसाद के काव्यतत्व को और बोलचाल की भाषा का भी सहारा लेकर भाषा के एकदम समन्वयात्मक रूप को प्रस्तुत करके अपनी भाषा को अलग बना दिया। रंगमंचीयता उनकी सबसे बड़ी विशेषता बन गई। रंगसज्जा के माध्यम से भी नाटककार हमसे कुछ बताता है।

प्रकाश व्यवस्था का समुचित प्रयोग उनके नाटकों में मिलता है। प्रकाश व्यवस्था के माध्यम से पात्रों की मानसिक स्थिति का भी चित्रण सफलता से किया है। कथ्य को अधिक अर्थवान बनाने में प्रकाश योजना का योगदान बहुत बड़ा है। कोणार्क नाटक से - "झीने अंधकार में उपक्रम ही की भाँति विराट नेपथ्य-संगीत। उसी भाँति थोड़ी देर में संगीत हठात् रूक जाता है। पूर्ण मौन। प्रकाश सूत्रधार और वाचिकाओं पर पड़ता है, और एक-एक करके जब वे बोलते हैं तो बोलने वाले पर प्रकाश प्रखर हो जाता है।"[62] नाटक में संगीत भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। माथुर ने 'कोणार्क' में संगीत का प्रयोग करके नाटक के आंतरिक सत्ता को उद्घाटित किया है। "... उस संगीत की अंतिम

ध्वनियाँ ऐसी हैं जैसे सागर की लहरों का अनवरत, न थकने वाला, सृष्टि की व्यंग्यमयी वेदना से परिपूर्ण रूदन।"[63] पार्श्व संगीत का प्रयोग मंचीय प्रभाव को और भी सशक्त बनाता है, जैसे - "कौन वह खंडहर सोता है? (थोड़ा विराम। मन्द और करुण वाद्य-स्वर।)"[64]

रंगभाषा की दृष्टि से देखें तो ध्वनि का स्थान महत्वपूर्ण है। माथुर ने अपने नाटकों में वातावरण की सृष्टि करने के लिए ध्वनि का सफल प्रयोग किया है -

"(बाहर हलचल)

नरसिंह : प्रतिहारी? किसी को पकड़कर ला रहे हैं। (कोलाहल।)"[65]

माथुर ने उपक्रम में कथागायन का प्रयोग किया है। उसी तरह भाषिक क्षमता को प्रबल बनाने के लिए उन्होंने मौन एवं विराम का प्रयोग सार्थकता के साथ किया है। स्थिति परिवर्तन एवं भावाभिव्यक्ति को और भी सशक्त बनाने के लिए मौन का प्रयोग कई स्थानों पर किया है। जैसे -

"वही झीना अंधकार। वही विराट नेपथ्य-संगीत किन्तु पहले की अपेक्षा अधिक हलचलपूर्ण, मानो शिव का प्रलयंकर ताण्डवराग हो! थोड़ी देर बाद हठात् पूर्ण मौन। सूत्रधार और वाचिकाओं पर मंद प्रकाश।"[66]

बिम्ब विधान की दृष्टि से वे सफल हुए हैं। "नाटकीय बिम्ब रचना में नाटककार के रंगबोध का परिचय मिलता है। आरम्भ से अन्त तक 'कोणार्क' की भाषा की बिम्ब संरचना इतनी सशक्त रही है कि मन्दिर के निर्माण की पूर्ण प्रक्रिया उसके स्थापत्य का प्रत्येक अंश दर्शक को महसूस होते है।"[67]

जंगदीशचन्द्र माथुर के बाद नाटक के लिए एक नई भाषा की तलाश करने वाले नाटककारों में धर्मवीर भारती का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने नाटक 'अंधायुग' (1955) द्वारा हिंदी नाट्यभाषा को यथार्थवाद के घेरे से पूर्णतः मुक्ति दी। ज़ाहिर है कि 'अंधायुग' अपनी विषयवस्तु एवं कथ्य की दृष्टि से आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य के लिए एक अनुपम उपलब्धी है। काव्य को रंगमंचीयता प्रदान कर उन्होंने हिंदी नाटक को नयी पहचान दी। यथार्थवादी नाटककारों ने छोड़े गए काव्यात्मकता को धर्मवीर भारती ने कई तरह के प्रयोग करके पूर्ववर्ती परंपरा से हटाते हुए रंगमंच पर सफल बनाया।

पाँच अंकवाले इस नाटक में संस्कृत नाटक की तरह मंगलाचरण, प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि का प्रयोग हुआ है। लेकिन रंगमंचीयता एवं संघटन की दृष्टि से नया प्रयोग है। इस नाटक में धर्मवीर भारती ने पौराणिक कथा द्वारा आधुनिक भावबोध को स्थापित किया है। माथुर की

तरह धर्मवीर भारती ने भी कथागायन का प्रयोग किया है। 'अंधायुग' के प्रथम अंक के आरंभ में कथागायन द्वारा महाभारत युद्ध के समय कौरवों एवं पाण्डवों द्वारा किए गए अमर्यादित बातों के बारे में कहा गया है। इस नाटक में अंक परवर्तन एवं दृश्य परिवर्तन के समय कथागायन का प्रयोग किया गया है।

प्रकाश व्यवस्था एवं ध्वनि संयोजन उनकी भाषिक दृष्टि को और भी प्रबल बनाते हैं। इन माध्यमों द्वारा उन्होंने नाटक में वातावरण का सृजन किया है -

"प्रहरी 2 : वादस नहीं है
ये गिद्ध हैं
लाखो करोड़ो
पंखें खोले
(पंखी की ध्वनि के साथ स्टेज पर और भी अंधेरा)

प्रहरी 1 : लो
सारी कौरव नगरी
का आसमान
गिद्धों ने घेर लिया

प्रहरी 2 : झुक जाओ
झुक जाओ

ढालो के नीचे

छिप जाओ

नरभक्षी हैं

ये गिद्ध भूखे हैं।

(प्रकाश तेज़ होने लगता है)

प्रहरी 1 : लो ये मूड़ गये

कुरुक्षेत्र की दिशा से

(आँधी की ध्वनि कम होने लगती है।) "[68]

ध्वनि के प्रयोग से हम कभी अनदेखे दृश्य को भी देख सकते हैं।

स्थान का बोध करने में प्रकाश व्यवस्था सफल हुई है। "(अंधेरा - केवल एक प्रकाश - वृत्त अश्वत्थामा पर, जो टूटा धनुष हाथ में लिये बैठा है)"[69]

अंधायुग रंगमंचीय दृष्टि से जो चुनौतियाँ सामने रख दिया। उनको मोहनराकेश ने स्वीकार किया। उनका 'आषाढ़ का एक दिन' (1958) हिंदी नाट्य जगत को एक अनुपम उपलब्धी है। यह नाटक कवि कालिदास के जीवन को केन्द्र बनाकर लिख गया नाटक है। इसमें कालिदास और मल्लिका के बीच की प्रेम कथा का वर्णन है। मोहन राकेश ने इसमें इतिहास और मिथक के माध्यम से आधुनिक जीवन की समस्याओं को उजागर किया है। हिंदी नाटक और रंगमंच को जीवंत

और संवेदनशील बनाने नाटककारों में मोहन राकेश का स्थान सबसे आगे है। उनके पहले नाटक की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उन्होंने नाटक को रंगमंच से ज़ोड़कर नाट्यभाषा को नए अर्थतल देकर नाटक को नई दिशा प्रदान की।

मन के भीतर उमड़ते विचारों और भावनाओं को अधिक प्रभावी ढ़ंग से अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने ऐसी एक भाषा की तलाश की, इसी यात्रा 'शब्द' और 'ध्वनि' तक आ पहूँची। उन्होंने शब्द और ध्वनि को रंगभाषा के उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया। उनकी भाषा पूर्ववर्ती भाषा के ढाँचे को तोड़कर उभरी हुई भाषा है, जो समकालीन संवेदनात्मक क्षमता से युक्त है। मोहन राकेश ने प्रतीक का प्रयोग करके नाट्यभाषा को प्रभावशाली बना दी। प्रतीक के माध्यम से हम अर्थतल की ऊँचाईयों को छू सकते हैं। प्रतीकों के प्रयोग से रंगमंच को सार्थक बनाने में 'आषाढ़ का एक दिन' सफल हुआ है। इसमें राकेश ने 'कुम्भ' को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक में इस कुम्भ के माध्यम से आर्थिक स्थिति का चित्रण किया गया है। पहले अंक में अंबिका के घर में चार कुम्भ थे, उस समय अंबिका धन कमाती थी और मल्लिका की देखभाल करने में समर्थ थी। लेकिन दूसरे अंक में अंबिका बीमार पड़ गई, इसी कारण आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय थी, इसलिए दो ही कुम्भ

रह गए। तीसरे में टूटे हुए कोनेवाला एक ही कुम्भ था, इससे आर्थिक व्यवस्था की बुरी हालत का संकेत मिलता है।

नाटक के प्रारंभ में मल्लिका का प्रवेश भीगे वस्त्रों से हुआ है। इसका विधान भी प्रतीकात्मकता को सहारा लेकर किया गया है। यह भीगापन सिर्फ उनके शरीर का नहीं उनके मन की कोमलता एवं आर्द्रता का प्रतीक बन जाता है। नाट्यभाषा की दृष्टि से ध्वनि का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने नाटक में ध्वनि का प्रयोग भी प्रतीकात्मक रूप में किया है। 'मेघ गर्जन' जैसी ध्वनियों का प्रयोग प्रतीकात्मक अर्थ को उद्घाटित करता है।

'आषाढ़ का एक दिन' में ऐतिहासिक समय का वातावरण प्रस्तुत करने के लिए ऐतिहासिक पात्रों के लिए संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है। मोहन राकेश की भाषा में व्यंजनाशक्ति अधिक है -

"मल्लिका : मैं जानती हूँ माँ, अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख की बात भी जानती हूँ। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब संबन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।"[70]

बिम्बों का निर्माण शब्दों द्वारा कैसे संभव है इसका उदाहरण है मल्लिका के संवाद की भाषा -

"चारों ओर धुआँरे मेघ घिर आये थे मैं जानती थी वर्षा होगी। फिर भी मैं घाटी की पगडंड़ी पर नीचे-नीचे उतरती गयी। एक बार मेरा अंशुक भी हवा में उड़ा दिया। फिर बूँदें पड़ने लगीं।"[71]

उन्होंने इस नाटक में लय का निर्वाह किया है। मल्लिका और कालिदास दोनों के बीच के संवादों में यह देख सकता है -

"मल्लिका : और वह प्रश्न मैं हूँ... हूँ न? उसे बाँहों से पकड़कर आसन पर बिठा देती है। यहाँ बैठो। तुम मुझे जानते हो। हो न?"[72]

मोहन राकेश ने नाट्यभाषा के तौर पर कई तरह के प्रयोगों को अपनाकर हिंदी नाटक और रंगमंच को जीवंत बना दिया।

मोहन राकेश के साथ लक्ष्मीनारायण लाल भी रंगमंच से विचलित हुई हिंदी नाट्य-परंपरा को स्वतंत्र्योत्तर काल में आकर पकड़ा। उनका पहला नाटक है 'अंधा कुआँ'। इसकी रचना 1955 में हुई। बाद में इसका पुनः संशोधित संस्करण का प्रकाशन 1981 में हुआ। उनका अगला नाटक है 'मादा कंक्टस' (1958)। ये दोनों प्रतीक नाटक हैं। 'अंधा कुआँ' नाटक में भारतीय ग्रामीण जीवन में व्याप्त आर्थिक विषमता से

उत्पन्न सामाजिक एवं पारिवारिक द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है।

चार अंक वाले इस नाटक में गीतों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। आँचलिक वातावरण प्रस्तुत करने के लिए गीतों का प्रयोग बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। हरेक अंक का आरंभ गीत से शुरू होता है। उनके गीत लोकगीत की श्रेणी में आते हैं। झूलाझूलनेवाली लड़कियों का गाना देखिए-

"गगरी पै कगवा, अरे बोलन लगे।
छोटे बेबुलवा के पातर डरिया,
तापे सुगनवा अरे डोलन लागे।
पोखरा में हँस बोले, तलरी में कुरिला
बिरहा की रतिया, अरे सालन लागे।
खुलि जाय अँचरा, मसकि जाय अँगिया
बाजू पै बन्दा, अरे घूमन लागे।
उड़ि जा तू कागा, सैंया के देसवा
कजरी के बनवां, अरे फूलन लगे।"[73]

परिवेश जन्य बोध बनाने के लिए भी गीतों का प्रयोग किया गया है -

"हमारे बवैया जू के सात बेटौना रे ना,

रामा सातो के चन्दा बहिनियाँ रे ना...।"[74]

'अंधा कुआँ" नाटक की भाषा बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है। पात्रानुकूल भाषा इसकी विशेषता है। इसमें आँचलिक शब्दों का प्रयोग अधिक देख सकते हैं। जैसे - इजलास, खबरदार, दिहिस, गुहार, पैरवा, बहरवांसी आदि। उनके नाटक की सबसे बड़ी विशेषता प्रतीकात्मकता है। 'अंधा कुआँ" प्रतीक है, उस अंधे समाज की, जो नारी जीवन बर्बाद कर देते हैं। उनका अगला प्रतीकात्मक नाटक है- मादा काक्टस। इसमें उन्होंने स्त्री-पुरुषों के आपसी संबन्धों का चित्रण किया है। भाषा की दृष्टि से उन्होंने मंचोपकरण का सार्थक उपयोग किया है। उन्होंने संगीत, ध्वनि, प्रकाश व्यवस्था आदि के माध्यम से पात्रों की मनःस्थिति को प्रभावी ढंग से उद्घाटित किया है। जैसे - "नीली दूधिया रोशनी के चारों ओर जो कुहरा जमा है सारे पात्र उस परिधि में आ फंसे हैं और सब उससे अपनी मुक्ति चाह रहे हैं।"[75]

उसी तरह ध्वनि संयोजन भी उनकी रंगभाषा को अलग बना देता है। "पार्श्व ध्वनियों के रूप में पक्षी, बन्दूक, कार स्टार्ट होने और आकर रूकने की आवाज़ों का सार्थक उपयोग किया गया है।"[76]

नाट्यभाषा में नए-नए खोज करके स्वातंत्र्योतत्तर हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध करने नाटककारों में लक्ष्मी नारायण लाल प्रमुख है। 1950 के बाद के हिंदी नाटकों की विषयवस्तु, शिल्प, भाषा आदि में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। इस काल में भाषा पाठ्य नाटक के चंगुल से मुक्त होकर रंगमंचीय उपादानों से आ जुड़ी। इन नाटककारों ने क्रियाकलाप एवं दृश्य-विधान जैसे शब्देतर माध्यम द्वारा नाट्यभाषा की अर्थ सीमा को और भी बढ़ावा दिया। इसके परिणाम स्वरूप मौन, अधूरा संवाद, शब्द-वाक्य आदि भी अर्थाभिव्यक्ति का सार्थक माध्यम बन गए।

2.1.6.1 साठोत्तर हिंदी नाट्यभाषा

साठोत्तर हिंदी नाट्य साहित्य नारी समस्या, वैवाहिक संबन्धों, जातिवाद, पाश्चात्य, संस्कृति की ओर जुनून, छुआछूत, रूढ़िवाद आदि कई समस्याओं के प्रति व्यंग्यात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली में कठोर प्रहार करके इन समस्याओं का शानदार हल ढूँढने का प्रयास करते थे। इन समस्याओं को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए नाटककारों ने कई तरह के तकनीकों को अपनाया। ये सभी बातें नाट्यभाषा की संभावना को बढ़ावा दीं। साठोत्तर हिंदी नाटक नई नाट्यभाषा की खोज में थे। इस युग में हिंदी नाटक के कथ्य और शिल्प में आए परिवर्तन

आश्चर्यजनक भी थे। रंगमंचीय उपलब्धियाँ इस युग के नाटकों को पूर्ववर्ती नाटकों से अलगाती हैं। इन नाटककारों ने नाटक की रंगमंचीयता को प्रमुखता दी। नाट्य निर्देशक एवं लेखक रंगभाषा की तलाश में एक-जुड़ होकर आगे बढ़े।

असल में नाटक के लिखित रूप का उत्तरदायित्व नाटककार की होती है, बल्कि नाटककार को उसे मंचीय अभिव्यक्ति के अनुरूप ढ़ालने का भी प्रयास करना चाहिए। ब.व.कारंत के शब्दों में - "रंगमंच का भाषा से बहुत गहरा संबन्ध है। भाषा से मेरा तात्पर्य बोलना नहीं बल्कि मनुष्य के व्यवहार से है। भाषा की अपनी परंपरा होती है। लिखना, बोलना, चलना, प्रतिक्रिया करना, मुख-मुद्राएँ बनाना, रेखाचित्र निर्माण और यहाँ तक कि अपनी विशिष्ट तरीके से खेती करना तक मेरे लिए भाषा है।"[77] समकालीन हिंदी नाटकों में समकालीन समय को आत्मसात करने की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है। "पौराणिक-ऐतिहासिक नाटक, समस्या नाटक, लोकनाटक, काव्यनाटक, एकांकी नाटक, रेड़ियो नाटक आदि के अतिरिक्त एब्सर्ड नाट्य शैली तथा नुक्कड़ नाटक जैसी नव्यतम प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ जिसमें आज़ाद भारतीय जीवन की सही तस्वीर देखी जा सकती है।"[78]

इस संदर्भ में सुरेन्द्रवर्मा का स्थान महत्वपूर्ण है। मोहनराकेश के बाद उनका नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने हिंदी नाटक और रंगमंच को एक नई दिशा प्रदान की। ऐतिहासिकता की झलक उनके नाटकों में देखा जा सकता है। 'आठवाँ सर्ग', 'सेतुबन्ध', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' आदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया नाटक हैं। इनमें ऐतिहासिकता द्वारा उन्होंने आधुनिक जीवन की व्याख्या की है। ऐतिहासिकता के कारण इसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे - बलाधिकृत, चषक, महिषी आदि। सुरेन्द्रवर्मा की नाट्यभाषा में विराम और मौन भी अत्यंत प्रबल रूप में देख सकते हैं। यह नाटक में भावोद्वेलित करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

"महतरिका : (शीघ्रतापूर्वक) मेरा मतलब है, कुछ निश्चित नहीं रहता।

ओक्काक : क्यों?

महतरिका : कई बातों पर निर्भर करता है।

ओक्काक : जैसे।

विराम

महतरिका : मेरी या उनकी मन स्थिति कार्य की अधिकता या कमी... थकान।

विराम

ओक्काक : और?

विराम

महतरिका : मेरी शारीरिक अवस्था।"[79]

उन्होंने मंचोपकरण का सफल प्रयोग करके नाटक की भाषा को सार्थक बनाया है। प्रकाश योजना का प्रयोग उनके नाटकों में प्रभावी रूप से किया गया है।

"इधर-उधर देखती है। मंच की प्रकाश-व्यवस्था धीरे-धीरे तीन आलोक-वृत्तों में बदलने लगती है, जो शीलवती, ओक्काक एवं शैया पर केन्द्रित है।"[80] प्रकाश की तरह ध्वनि और संगीत भी नाट्यभाषा का रूप लेकर नाटक की आत्मा को प्रस्तुत करती है। "द्रौपदी संकेतों, प्रतीकों और रंगशिल्प के सार्थक एवं संयत प्रयोग के कारण रंगमंच की भाषा का नाटक कहलाने की अधिकारी है। पात्र मनमोहन के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने के लिए सुरेन्द्रवर्मा शब्दों के प्रयोग की अपेक्षा मुखौटों का प्रयोग करते हैं। यह मुखौटा-धर्मिता मनमोहन के विभिन्न पक्षों को अत्यन्त नाटकीयता के साथ दर्शकों पाठकों के सम्मुख रखती है।"[81] इसी प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने भाषा एवं भाषेतर माध्यम के द्वारा अपनी नाट्यभाषा को संपन्न किया है।

सामाजिक यथार्थ के नाटक लिखकर 'भीष्मसाहनी' ने नाट्य क्षेत्र में अपना कदम उठाया। 'हानुष' उनका पहला नाटक है, जो चेकोस्लोवाकिया की लोक कथा के आधार पर लिखा गया है। इसमें उन्होंने उर्दू-फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है।

"लो कात्या, मेरी जान अब घड़ी नहीं बनेगी तो समझी, कभी भी नहीं बनेगी। मैंने इसकी ऐसी नब्ज़ पकड है कि अब यह हिल नहीं सकती। ... आदाब बड़े भाई, आप कब तशरीफ़ लाए?"[82]

मध्ययुगीन परिस्थितियों के निर्माण वेशभूषा द्वारा सफल है। उनका अगला नाटक है - 'कबिरा खड़ा बाज़ार में'। इसमें अवधी, भोजपुरी और लोक गीतों का प्रयोग आदि से यह लोक नाट्य का माहौल बनाता है। बोलचाल की भाषा का प्रयोग उनके नाटक को विशिष्ट बनाता है। भीष्म साहनी का कथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है- "रंगमंच पर इसे पेश करते समय श्री राजेन्द्रनाथ ने अपने बहुमूल्य सुझाव दिए नाटक की भाषा के बारे में भी और नाटक को और ज़्यादा चुस्त और गतिशील बनाने के लिए भी। मैंने उनके अधिकांश सुझावों को स्वीकार किया है, नाटक में से कुछेक अनावश्यक प्रसंग निकाल या बदल दिये हैं और भाषा को बोलचाल की भाषा के और ज़्यादा नज़दीक लाने की कोशिश की है।"[83]

साठोत्तर हिंदी नाटकों के प्रथम चरण के रूप में मोहनराकेश के 'आधे अधूरे' एवं 'लहरों का राजहंस' आदि नाटक सामने आते हैं। 'आधे अधूरे' नाटक नाट्यभाषा की दृष्टि से अनमोल संपत्ति है। जयदेव तनेजा के अनुसार "समस्त हिंदी नाट्य साहित्य की भाषा का चरम विकास हमें 'आधे अधूरे' में देखने को मिलता है।"[84] राकेश जी ने प्रकाश के माध्यम से मंच पर उपस्थित हरेक वस्तुओं एवं क्रिया कलापों को गंभीरता से प्रकट किया है। मंच पर उपस्थित पात्रों की सभी क्रियाकलापों ने नाट्यभाषा की सूक्ष्म तंतुओं को खोल दिया है। 'आधे अधूरे' की अशोक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। उनके विद्रोही व्यक्तित्व की झलक उनके क्रिया-कलापों द्वारा प्रकट है - 'मेज़ की दराज़ बार-बार खोल और बंद करना, चुप रहना' आदि।

प्रकाश एवं संगीत का अनूठा प्रयोग उनके 'आधे अधूरे' में मिलता है- "प्रकाश खंडित होकर स्त्री और बड़ी लड़की तक सीमित रह जाता है। स्त्री स्थिर आँखों से बाहर की तरफ़ देखती आहिस्ता से कुरसी पर बैठ जाती है। बड़ी लड़की एक बार उसकी तरफ़ देखती है, फिर बाहर की तरफ़। हलका मातमी संगीत उभरता है, जिसके साथ उन दोनों पर भी प्रकाश मद्धिम पड़ने लगता है।... "[85]

'आधे-अधूरे' में उन्होंने तनावग्रस्त स्थितियों को व्यक्त करने के लिए मौन का भी प्रयोग किया।

"बड़ी लड़की : मेरा अपना घर। ... हाँ। और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज़ है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है (लगभग टूटते स्वर में)...।"[86]

आन्तरिक द्वन्द्व एवं तनाव को प्रस्तुत करने के लिए अधूरे संवादों का प्रयोग किया गया है। 'लहरों के राजहंस' के सुन्दरी और नन्द के बीच का संवाद इसका उदाहरण है -

"नन्द : (अपने में खोया-सा) विशेषक?... अ... हाँ... ! (हाथ बढ़ाकर) लाओ, दो मुझे।

सुन्दरी : (कटोरी हटाकर) नहीं, इस मन से नहीं। पहले बताएँ क्या सोच रहे हैं? "[87]

ध्वनियों का प्रयोग भी नाट्यभाषा की सीमा को और भी बढ़ा देती है। स्त्री की थकान, तिरस्कार, कड़वाहट आदि को व्यक्त करने के लिए "ओह होह् होह् होह्, होह्!"[88] जैसी ध्वनियों का प्रयोग नाटककार ने गंभीरता से किया है।

समकालीन यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ समय की माँग के अनुसार शिल्प एवं कथ्य में बदलाव लानेवाले आधुनिक नाटककारों में

विनोद रस्तोगी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने नाटक 'नए हाथ' में रंगमंच की दृष्टि से पात्रों की वेशभूषा पर अधिक ध्यान दिया गया है।

> "बाहर से माला का प्रवेश। गौर वर्ण की सुन्दर तथा स्वस्थ युवती है। लम्बी नाक, बड़ी आँखें कुन्वित केश। रेशमी साड़ी तथा ब्लाउज़ पहने है। कलाई में छोटी घडी है, पैरों में आधुनिक फैशन की सैण्डिल हैं। बंगल में दो पुस्तकें तथा एक नोटबुक दबाये हैं।"[89]

नाग बोडस आधुनिक रंगमंच को समृद्ध करनेवाला नाटककार है। उन्होंने नाटक की मंचीयता को प्रमुखता दी है। 'कृति-विकृत', 'टीन-टप्पर', 'नर-नारी' आदि उनकी प्रमुख नाट्य रचनाएँ हैं। 'कृति-विकृति' नाटक में मध्यवर्गीय पारिवारिक स्थिति का वर्णन है। भाषा की दृष्टि से उन्होंने रंग संकेतों का प्रयोग किया है। इस नाटक में पात्र कभी-कभी दर्शकों को संबोधित करके बातें करते हैं और नाटककार ने फ़्लैश-बाक शैली का भी प्रयोग किया है। साधारण बोलचाल की भाषा से नाटकीय अर्थ को उजागर करने में नाटककार सफल हुआ है। इस नाटक में पात्रों द्वारा अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

विभुकुमार भी नाट्यभाषा की तलाश में अपनी अलग दृष्टिकोण दर्शाया है। उनके 'हवाओं का विद्रोह' नाटक का प्रमुख पात्र लक्ष्मी

नामक आदिवासी लड़की है। नाटक में लक्ष्मी के मन के अंतर्द्वन्द्वों को चित्रित करने के लिए स्वगत कथनों का प्रयोग किया गया है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग उनके नाटक को प्रभावी बना दिया है। आदिवासी अंचल में रहनेवाले लोगों के स्तर के अनुसार भाषा को मोड़ दिया है। लक्ष्मी को आश्रम स्कूल में पठाने की बात वह परिवार वालों से करती है -

"कहूँ जा रे हो का दद्दा?
तुमें आश्रम विद्यालय में भेजबें वारे हैं।
अभई जाने हैं, मैं उतई से आ रहो हों।"[90]

असंगत नाट्यशैली में लिखनेवाले नाटककारों में विपिनकुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस आदि का नाम उल्लेखनीय है। असंगत नाटकों में भाषा अधिक शक्तिशाली है। भाषा एवं शिल्प में इन नाटककारों ने क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। विपिनकुमार अग्रवाल का नाटक 'लोटन' कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें संवादों के साथ-साथ रंग संकेतों का उल्लेख किया गया है। ध्वनि एवं संगीत का प्रयोग संवादों को और भी प्रभावी बना देता है। बोलचाल की भाषा का प्रयोग नाटक में एक लय पैदा करती है। आरोह-अवरोह के साथ का संवाद एवं

प्रतीकों का प्रयोग नाटक के प्रस्तुतीकरण को चुस्त एवं मार्मिक बना देता है।

"मालती: नहीं डाकघर में आदमी नहीं जा सकते।

लोटन : क्यों नहीं जा सकते?

मालती : क्यों नहीं जा सकते? अरे, नहीं जा सकते, बस.. ऐसा नियम है।

लल्लू : (मदद करने के स्वर में) नियम यानी कानून।

लोटन : कानून आदमी के खिलाफ है?"[91]

मुद्राराक्षस का 'योर्स फेथ फुली' असंगत नाट्यशैली में लिखा गया नाटक है। इसमें सरकारी दफ्तरों के भ्रष्टाचार का चित्रण है। मानवीय यांत्रिकता, आशंका, डर आदि इस नाटक का विषय है। इसी तरह 'तिलचट्टा' भी असंगत शैली का महत्वपूर्ण उपलब्धी है।

साठोत्तर पीढ़ी के बाद आनेवाले नाटककारों में प्रमुख है असगर वजाहत। उन्होंने समकालीन नाट्य क्षेत्र में सिर्फ कथ्य को नहीं, नाट्यभाषा को भी उर्वर बना दिया है। उन्होंने बोलचाल की भाषा से उनके नाट्य साहित्य को समृद्ध किया। उनके नाटक में अंग्रेज़ी, उर्दू जैसी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता है। उनका चर्चित नाटक है 'गोडसे@गांधी.कॉम'। इसमें उन्होंने हरेक दृश्य की शुरूआत उद्घोषणा के

साथ किया है। उद्घोषणा के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। प्रकाश व्यवस्था के बारे में भी उन्होंने संकेत दिया है।

स्वदेश दीपक ने कुल मिलाकर पाँच नाटक लिखकर हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध किया। उनके नाटक हैं - 'नाटक बाल भगवान', 'कोर्ट मार्शल', 'जलता हुआ रथ', 'सबसे उदास कविता' और 'काल कोठरी'। भाषा की सरलता एवं सहजता के कारण उनके सभी नाटक संप्रेषण योग्य है। उनकी भाषा में अंग्रेज़ी की बहुलता दिखाई पड़ती है। यह नाटक के लिए अनिवार्य है। 'काल कोठरी' उनका चर्चित नाटक है। इसमें कलाकार की पराधीनता और रंगमंच को बनाए रखने का प्रयास भी चित्रित किया गया है। उन्होंने लंबे-लंबे संवादों का प्रयोग किया है। एकालाप का प्रयोग उनकी नाट्यभाषा को अलग बना दिया है। नाटक में रजत का एकालाप उन्होंने तीन तरह की आवाज़ में प्रस्तुत किया है। एक आक्रोश के स्वर में, दूसरा प्रलाप, तीसरा शांत स्वर में।

नाटक में वाक्यों की पुनरावृत्ति द्वारा उन्होंने भावात्मक अभिव्यक्ति को सार्थक बना दिया है।

"रजत : कौल साहब मैं नौकरी करूँगा।

कौल : देखो रजत....

रजत : (ऊँची आवाज़) मैं नौकरी करूँगा।

कौल : कर लेना। रिलेक्स...

रजत : (चीखकर) मैं नौकरी करूँगा।"[92]

समकालीन नाटककारों में प्रमुख हस्ताक्षर है राजेश जैन। "राजेश जैन के नाटक बीसवीं सदी के विकास और इक्कीसवीं सदी की मूल्य चेतना दोनों को जोड़कर विश्लेषित करते हैं। विज्ञान और अध्यात्म के तालमेल पर बात करता राजेश जैन का नाट्य साहित्य पर्यावरण के मुद्दों पर बहस खड़ी करता है।"[93] उनके नाटक में छोटे-छोटे संवादों का प्रयोग किया गया है। इससे पात्रों के आंतरिक द्वन्द्व को व्यक्त कर सकते हैं। 'विराम' का प्रयोग उनके संवाद की विशेषता है।

"रंजना : घर तो छोड़ना ही होगा।

(विराम)

(सूटकेस वंदना के सामने रखती है) ध्यान से देखो वंदना, यह मेरा नहीं, तुम्हारा सूटकेस है।"[94]

उन्होंने संगीत एवं ध्वनि का प्रयोग प्रसंगानुकूल करके वातावरण का सृजन किया है। 'विषवंश' नाटक में रंदा के पुत्र प्राप्ति के अवसर पर बच्चे के रोने के स्वर के साथ वाद्य उपकरणों के स्वर एवं संगीत की योजना भी की है। उनका पर्यावरण केन्द्रित नाटक 'चिमनी चोगा' में उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों का मानवीकरण किया है। औद्योगीकरण एवं

मशीनीकरण पर तीखे स्वर में व्यंग्य किया गया है। बोलचाल की भाषा की सहजता एवं विषय की ताजगी उन्हें अन्य नाटककारों से अलगाती है।

2.1.6.1.1 लोकनाट्य शैली का हिंदी नाटक

हिंदी के नए नाटकों की खोज की उपलब्धी है लोकनाट्य शैली। नए नाटककारों ने लोकनाट्य परंपरा के विभिन्न पहलुओं को भी नई रंगभाषा में रचनात्मक रूप से उपयोग करके नाट्य भाषा को मज़बूत किया। इस नई रंगदृष्टि को स्वायत्त करनेवाले नाटककारों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और मणि मधुकर प्रमुख हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का प्रमुख नाटक 'बकरी' एक प्रतीकात्मक नाटक है। इसमें राजनीतिक भ्रष्टाचार का व्यक्त चित्रण मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्यात्मकता के साथ चोट लगायी गयी है। इसके संवाद कभी पद्यात्मकता से भरे हैं। "डब्बे में डब्बा। उसमें मुरब्बा फिर भी हैं चीटी, या मेरे अब्बा।"[95] इसमें गीत-संगीत का प्रयोग भी किया गया है। गीत में तुकांत शब्दों का प्रयोग करके नाटक में रोचकता पैदा करती है। व्यंग्यात्मक ढंग से गीत का प्रयोग किया गया है। जैसे-

"रंडा ऊँचा रहे हमारा

सबसे प्यारा सबसे न्यारा।

रंडा ऊँचा रहे हमारा।"[96]

इस नये रंगशिल्प हिंदी रंगमंच को पूर्ववर्ती रंग परंपरा से अलगाते हैं। सक्सेना हिंदी क्षेत्र के लोकनाट्यों को पकड़ लिया तो मणि मधुकर ने राजस्थानी लोकनाट्य परंपरा का सहारा लिया। उन्होंने लोक रंगमंच के विचारों, परंपराओं और शैलियों को रचनात्मक रूप से हिंदी रंगमंच पर लागू किया। मणि मधुकर की नाट्यभाषा का अध्ययन आगे किया जा रहा है।

2.1.7 महिला नाट्य लेखन और नाट्यभाषा

स्त्री अपनी अस्मिता के लिए जो लिखती है, वो स्त्री लेखन के अंतर्गत आती है। साहित्य और भाषा में अटूट संबन्ध है। अपने मन की अभिव्यक्ति को प्रकट करने के लिए भाषा अनिवार्य है। नारी लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में इस पुरुष केन्द्रित समाज के पुरुष निर्मित भाषा से हटकर अपनी अलग भाषा को ढूँढा, जिसमें नारी मन की संवेदनाओं को आत्मसात करने की क्षमता है। इस बदलते सामाजिक परिवेश में महिलाओं के जीवन और सोच में बडा बदलाव आया। शिक्षा एवं नारीवादी चिंतन द्वारा उनकी सोच और मानसिकता में बदलाव

आया। महिलाएँ अब अपनी अधिकारों के प्रति जागरूक हो गईं। इन सबका विकसित प्रभाव उनकी भाषा पर भी पड़ा। स्त्री अपनी कलम के माध्यम से अपने पात्रों द्वारा नारी समाज की वेदना, चाहत, सुख-दुख को स्पष्ट करती थी।

आज महिलाएँ हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना चुकी हैं। साहित्य की सभी विधाओं में अपना स्थान बन पायीं हैं। नाट्य क्षेत्र में अपनी भाषा एवं शिल्प के माध्यम से उन्होंने नए ढंग के बदलाव लाकर हिंदी रंगमंच को एक नई दिशा प्रदान की। हिंदी के महिला नाटककारों में प्रमुख हैं - मन्नु भण्डारी, मृदुला गर्ग, त्रिपुरारी शर्मा, मीराकांत, कुसुम कुमार।

2.1.7.1 मन्नु भण्डारी

मन्नु भण्डारी का प्रमुख नाटक है 'बिना दीवारों के घर'। इसमें उन्होंने पारिवारिक समस्याओं को उभारा है। उन्होंने साधारण बोलचाल की भाषा से नाटक के कथ्य को प्रभावी बना दिया है। उन्होंने स्त्री की मानसिक स्थिति का स्पष्ट चित्रण करने केलिए विराम का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है।

"शोभा : बस कुछ ऐसा ही समझ लो। इन्हें मेरा इधर-उधर जाना पसंद नहीं और मैं नहीं चाहती कि ज़रा सी बात के लिए.....।"[97]

उन्होंने पात्रों के भाव के अनुसार भाषा का प्रयोग करके संवादों को सार्थक बना दिया है।

"शोभा : (बहुत ही शांत स्वर में) एक बात पूछूँ? आपको घर का इतना ख्याल है, अपना और अप्पी का खयाल है, पर कभी मेरा भी खयाल किया है आपने? कभी मेरी भावनाओं को भी समझने की कोशिश की है? मेरी अपनी भी कुछ आकांक्षाएँ है, अपने जीवन का कोई स्वप्न है।...."[98]

अधूरा संवाद भी अंतर्मन की भावनाओं एवं संघर्ष को व्यक्त करने में सहायता देती है। अजित के संवाद में इसकी झलक मिलती है।

"अजित: कारण भी मुझे ही बताना होगा? तो सुनो। (स्वर में हल्का-सा आवेश आ जाता है) मैं चाहता हूँ मेरा घर-घर हो- कोई ऑफ़िस या होटल नहीं। थका माँदा मैं ऑफ़िस से लौटकर आऊँ तो मेरी भी इच्छा होगी कि मेरी पत्नी- (बात बीच में ही छोड़ देता है)...।"[99]

प्रकाश योजना द्वारा उन्होंने समय का बोध दिलाती है। ज़ाहिर है कि मन्नु भण्डारी ने अपने नाटकों में सामाजिक समस्याओं को उभारने के लिए और उसी के अनुकूल पात्रों के मनोभाव को ध्यान में रखते हुए

ऐसी सहज भाषा का प्रयोग किया है, जो उनके नाटक को महत्वपूर्ण बना दिया है।

2.1.7.2 मृदुलागर्ग

मृदुलागर्ग अपना पहला नाटक 'एक और अजनबी' में भाषा, शिल्प, कथ्य एवं रंगमंचीयता के कारण अलग पहचान बनाया है। इस नाटक में स्त्री-पुरुष संबन्धों का एक अलग रूप प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रमुख पात्र शानी और इंदर है, जो प्रेमी-प्रेमिका है। इंदर अपनी केरियर को अधिक महत्व देता है। इसलिए शानी जगमोहन को शादी करती है। जगमोहन की चिंता केवल पद, प्रमोशन आदि के बारे में है। नाटक में ये दोनों पात्रों का व्यक्तित्व अलग है। इसका मार्मिक चित्रण नाटक में किया गया है।

लेखिका ने स्वगत का प्रयोग पात्रों के मानसिक संघर्ष को चित्रित करने के लिए किया है। शादी के बाद शानी और इंदर का फिर मिलन हुआ है। इस संदर्भ में शानी का कथन इसका ज्वलंत उदाहरण है। यह सिर्फ कथन नहीं एक आक्रोश है- "नहीं ऐसे नहीं। मैंने कुछ और चाहा था।"[100]

मंचोपकरण का प्रयोग भी उनकी भाषा को शक्ति प्रदान की। प्रकाश व्यवस्था का प्रयोग भी वातावरणानुकूल और भावानुकूल चित्रित किया गया है। "मंच पर फौरन प्रकाश लौट आता है। वही नीला प्रकाश, जो दूसरे दृश्य में स्त्री-पुरुष के मंच पर आने के समय फैला हुआ था।"[101]

अंग्रेज़ी संवादों का प्रयोग नाटक में देख सकता है, जो पात्रानुकूल है। उसीतरह वातावरणानुसार संगीत का प्रयोग भी किया गया है। संगीत का प्रयोग स्थिति के अनुकूल माहौल बनाने में सहायता देती है। व्यंजनात्मक क्षमता से युक्त संवाद भी इन नाटक को प्रबल बना दिया है।

2.1.7.3 कुसुम कुमार

हिंदी के प्रमुख नाट्य लेखिका कुसुम कुमार के नाटक भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। उनके प्रमुख नाटक हैं - 'सुनो शेफाली', 'रावण-लीला', 'संस्कार को नमस्कार' आदि। 'सुनो शेफाली' नाटक में एक दलित लड़की की कहानी है। छः दृश्यों में विभाजित यह नाटक में हरेक दृश्य सज्जा भी रंगभाषा का द्वार खोल देता है। बोलचाल के प्रयोग के द्वारा दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करने में यह नाटक सफल हुआ है। "सुनो शेफाली की भाषा में कहीं गुस्सा, कहीं घृणा, कहीं प्रेम

और कहीं उत्साह झलकता है। इन सभी भावों को उचित शब्दों के सार्थक प्रयोग से नाटककार ने नाटकीय भाषा को चुस्त बनाया है।"[102]

2.1.7.4 त्रिपुरारी शर्मा

त्रिपुरारी शर्मा हिंदी के प्रमुख नाटककार एवं निर्देशिका है। उनके प्रमुख नाटक हैं - 'बहु', 'अक्स पहेली', 'रेशमी रूमाल' आदि। उनके नाटकों के नामकरण में भी एक विशेषता होती है, जो नारी समस्या को उजागर करने वाले हैं। उन्होंने नाटक में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जो स्त्रियाँ अपने आसपास में बोली जानेवाली है। रंगभाषा पर भी उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने संवाद में स्वगत, विराम आदि के प्रयोग से नारी जीवन के अंतर्द्वन्द्व को व्यक्त किया है।

गीत का प्रयोग भी उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है।

"साँझ हुई तरकाले पड़ी
हुनेरा हो गय काला
वेणी पकड़ के अन्दर ले गया ...।"[103]

उनके नाटक में लोकगीतों का प्रयोग देखने को मिलता है। जो स्त्री-भाषा की स्वाभाविकता को अभिव्यक्त करती है उन्होंने अपने नाटक में पात्रों के स्तरानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि महिला नाटककारों ने स्त्री की मानसिक दर्द को स्वानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है। साधारण घरेलू अनपढ़ नारियों की भाषा के संदर्भ में सरलता का सहारा लिया है। लेकिन पढी-लिखी औरत की भाषा तर्कसंगत है।

2.2 निष्कर्ष

भारतेन्दु युग से लेकर आज तक के हिन्दी नाट्य साहित्य में भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से कई तरह के परिवर्तन आ चुके हैं। इस युग में संस्कृत नाटकों की तरह मंगलाचरण, प्रस्तावना, भरतवाक्य नान्दी आदि के प्रयोग देख सकते हैं। भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया। भारतेन्दु और उनके मण्डलियों ने समाज सुधार को प्रमुखता दी इसलिए उन्होंने ऐसी एक भाषा को ढूँढा जो साधारण जन मानस तक पहूँचाए। भारतेन्दु और प्रसादयुग के बीच की कड़ी के रूप में द्विवेदी युगीन नाटक को ले सकते हैं। द्विवेदी युग में अनुवाद की भरमार थी। इसलिए भाषा की दृष्टि से सफलतापूर्वक परिवर्तन उतना नहीं हुआ जितना पूर्ववर्ती युग में था। भारतेन्दु के बाद युगप्रवर्तक के रूप में प्रसाद का नाम ले सकता है। उनकी नाट्य रचनाएँ हिंदी नाटक के लिए नई दिशा एवं स्वतंत्र रंगदृष्टि प्रदान की। प्रसाद के बाद हिंदी नाट्य साहित्य दो दिशाओं में बहने लगे। एक तो प्रसाद की

परंपराओं को लेकर चला दूसरे में प्रसाद की नाट्यकला से अलग होकर रचना हुई। यह प्रसादोत्तर युग से जाने जाते हैं। अभिनय की दृष्टि में इस युग के नाटक अधिक सफल हुए। 1950 के बाद के स्वातंत्र्योत्तर काल के नाटककारों ने पूर्ववर्ती परंपरा से हटकर रचना की। उन्होंने भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से नई दिशा की तलाश की। यथार्थवादी जीवन दृष्टि के कारण इस युग में मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय जीवन का चित्रण अधिक हुआ। इस युग में भाषा में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। भाषा की दृष्टि से नाटककारों ने पुरानी मान्यताओं को तोड़कर नई भाषा को गढ़ी।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ.जशवंत भाई डी.पांड्या, समकालीन हिंदी नाटक, पृ.11
2. नाट्यशास्त्र, अध्याय 20
3. सं.डॉ.जयशंकर त्रिपाठी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत श्री चन्द्रावली नाटिका (विस्तृत भूमिका तथा संशोधित मूल-पाठ), पृ.27-28
4. महेश आनन्द, रंग दस्तावेज़ : सौ साल-2, पृ.14
5. गिरीश रस्तोगी, रंगभाषा, पृ.42
6. वही, पृ.51
7. सं.डॉ.गंगा सहाय 'प्रेम', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनका नाटक भारत दुर्दशा, पृ.21
8. सं.डॉ.परमानंद श्रीवास्तव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत अंधेर नगरी, पृ.52
9. सं.डॉ.गंगा सहाय 'प्रेम', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनका नाटक भारत दुर्दशा, पृ.3-4
10. सं.डॉ.परमानंद श्रीवास्तव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत अंधेर नगरी, पृ.38

11. सं.डॉ.जयशंकर त्रिपाठी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत श्री चन्द्रावली नाटिका (विस्तृत भूमिका तथा संशोधित मूल-पाठ), पृ.99
12. वही, पृ.106
13. सं.डॉ.परमानंद श्रीवास्तव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत अंधेर नगरी, पृ.55
14. सं.डॉ.गंगा सहाय 'प्रेम', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनका नाटक भारत दुर्दशा, पृ.18
15. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.373
16. सं. रमेश गौतम, हिंदी रंगभाषा : स्वरूप और विकास, पृ.52
17. अम्बिकादत्त व्यास, भारत सौभाग्य, पृ.21
18. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, नाट्यालोचना, पृ.261
19. डॉ.देवेन्द्रकुमार गुप्ता, हिंदी नाट्यशिल्प बदलती रंगदृष्टि, पृ.108
20. वही, पृ.110
21. वही, पृ.119
22. महेश आनन्द, रंग दस्तावेज़ : सौ साल-2, पृ.103
23. रमेश गौतम, हिंदी रंगभाषा : स्वरूप और विकास, पृ.71
24. जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ.89

25. जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ.61

26. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृ.34

27. जयशंकर प्रसाद, राज्यश्री, पृ.18

28. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृ.16

29. https://www.hindisamay.com

30. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृ.16

31. डॉ.देवेन्द्रकुमार गुप्ता, हिंदी नाट्यशिल्प : बदलती रंगदृष्टि, पृ.138

32. जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ.100

33. जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ.50

34. बद्रीनाथ भट्ट, दुर्गावती, पृ.17

35. जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ.18

36. वही, पृ.59

37. सेठ गोविन्ददास, प्रकाश, पृ.10

38. वही, पृ.26

39. रमेश गौतम, हिंदी रंगभाषा : स्वरूप और विकास, पृ.83

40. वही, पृ.83

41. महेश आनन्द, रंग दस्तावेज़ : सौ साल-2, पृ.102

42. वही, पृ.102

43. जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ.3

44. https://www.hindisamay.com

45. डॉ.देवेन्द्रकुमार गुप्ता, हिंदी नाट्यशिल्प : बदलती रंगदृष्टि, पृ.174

46. उदयशंकर भट्ट, अम्बा, पृ.22

47. उदयशंकर भट्ट, सागर विजय, पृ.16

48. लक्ष्मी नारायण मिश्र, दशाश्वमेघ, पृ.45

49. उदयशंकर भट्ट, सागर विजय, पृ.49

50. हरिकृष्ण प्रेमी, कीर्तिस्तंभ, पृ.234

51. लक्ष्मी नारायण मिश्र, राक्षस का मंदिर, पृ.29

52. उदयशंकर भट्ट, अम्बा, पृ.5-6

53. उदयशंकर भट्ट, सागर विजय, पृ.42

54. सेठ गोविन्ददास, नाट्य कला, पृ.21

55. डॉ.देवेन्द्रकुमार गुप्ता, हिंदी नाट्यशिल्प : बदलती रंगदृष्टि, पृ.198

56. हरिकृष्ण प्रेमी, शिवासाधना, पृ.2

57. सेठ गोविन्ददास, प्रकाश, पृ.25

58. वही, पृ.87

59. उदयशंकर भट्ट, सागर विजय, पृ.12

60. डॉ.गोविन्द चातक, आधुनिक हिंदी नाटक भाषिक एवं संवादीय संरचना, पृ.75

61. जगदीशचन्द्र माथुर, कोणार्क, पृ.14

62. वही, पृ.19

63. वही, पृ.17

64. वही, पृ.18

65. वही, पृ.46

66. वही, पृ.53

67. डॉ.देवेन्द्रकुमार गुप्ता, हिंदी नाट्यशिल्प : बदलती रंगदृष्टि, पृ.231

68. धर्मवीर भारती, अंधायुग, पृ.16

69. वही, पृ.35

70. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन, पृ.14-15

71. वही, पृ. 7

72. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन, पृ.45

73. डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल, अंधाकुआँ, पृ.66-68

74. वही, पृ.84

75. डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल, मादा काक्टस, पृ.15

76. डॉ.देवेन्द्रकुमार गुप्ता, हिंदी नाट्यशिल्प : बदलती रंगदृष्टि, पृ.341

77. सं.जयदेव तनेजा, रंग साक्षात्कार, पृ.97

78. डॉ.देवेन्द्रकुमार गुप्ता, हिंदी नाट्यशिल्प : बदलती रंगदृष्टि, पृ.341

79. सुरेन्द्र वर्मा, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, पृ.34

80. वही, पृ.54

81. डॉ.देवेन्द्रकुमार गुप्ता, हिंदी नाट्यशिल्प : बदलती रंगदृष्टि, पृ.286

82. https://prayog.pustak.org

83. https://prayog.pustak.org

84. नटरंग, अंक-97-98, पृ.26

85. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ.94-95

86. वही, पृ.9

87. रमेश गौतम, हिंदी रंगभाषा : स्वरूप और विकास, पृ.112

88. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ.13

89. रमेश गौतम, हिंदी रंगभाषा : स्वरूप और विकास, पृ.222

90. वही, पृ.230

91. वही, पृ.233

92. स्वदेश दीपक, काल कोठरी, पृ.23

93. रमेश गौतम, हिंदी रंगभाषा : स्वरूप और विकास, पृ.269

94. वही, पृ.271

95. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, बकरी, पृ.11

96. वही, पृ.20

97. मन्नु भण्डारी, बिना दीवारों के घर, पृ.15

98. वही, पृ.32

99. वही, पृ.44

100. मृदुलागर्ग, एक और अजनबी, पृ.167

101. वही, पृ.127

102. रमेश गौतम, हिंदी रंगभाषा : स्वरूप और विकास, पृ.238

103. वही, पृ.173-174

तीसरा अध्याय

मणि मधुकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को अपनी रचनाओं के माध्यम से हमारे लिए अनुभवजन्य बनानेवाले साहित्यकार हैं मणि मधुकर। वे एक प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने प्रान्त के बाहर साहित्य के माध्यम से अपनी पहचान बनायी है। मणि मधुकर की राजस्थानी और हिंदी भाषाओं में अपनी अलग पहचान है। लेखकीय जीवन के बारे में उन्होंने बताया है- "लेखक अपने लेखकीय जीवन में कहीं नहीं पहूँचता। जो ऊँचाईयों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि हम एक ऐसी जगह पर पहूँच गए कि अब हमारे मन में पूरी संतुष्टी है। मुझे नहीं लगता कि वो लोग सही सोचते हैं। लेखक बराबर लिखता रहे, बराबर गतिशील रहे, बराबर इस दुनिया के साथ रफ्तार रहे, अनुभवों के साथ जुड़ा हुआ रहे, लोगों के दुख-दर्द और संघर्ष में शामिल रहे, तो उसका लेखन सार्थक है, तो ऐसी लेखन में कोई उँचाई नहीं होती और कोई नीचाई नहीं।"[1] मणि मधुकर ने अपने साहित्य के माध्यम से जिन समस्याओं को उभारा है, वह सार्वलौकिक है।

किसी एक रचना को पूरी तरह पहचानने के लिए रचनाकार के व्यक्तित्व को जानना आवश्यक है। हरेक साहित्यकार की साहित्यिक रचना को उनके व्यक्तित्व से अलग करके देखा नहीं जा सकता।

"रचनाकार का साहित्यिक व्यक्तित्व एवं व्यक्तिगत व्यक्तित्व कहीं-न-कहीं एक दूसरे में गड़मड़ ज़रूर हो जाता है।"[2] साहित्यकार के मन में निहित संघर्ष एवं संवेदनाएँ ही साहित्य के रूप में हमारे सामने आते हैं। वास्तव में यह उनके व्यक्तित्व की झलक है। इसलिए किसी एक साहित्यकार की रचनाओं का अध्ययन करने के लिए उनके जीवन एवं व्यक्तित्व से संबंधित विभिन्न पहलुओं की जानकारी आवश्यक है।

3.1 मणि मधुकर : जन्म व परिवार

राजास्थान के चुरू जिले के सेऊवा (राजगढ़) गाँव में एक सामान्य किसान परिवार में 9 सितंबर 1942 ई में मणि मधुकर का जन्म हुआ। उनका मूलनाम मनीराम शर्मा है। उनकी पत्नी रचना मधुकर है। उनके दो बच्चे हैं - मीनल मधुकर और हेमांग मधुकर। उनकी पुत्री मीनल मधुकर एक सशक्त नारी है। वे अमेरिका में 'रॉ कम्यूनिकेशन' में निदेशक हैं। पुत्र हेमांग मधुकर आर्किटेक्ट का काम करता है। उनका परिवार भी उनके साहित्य के प्रति गहरी रुचि रखता है। परिवार वाले भी साहित्य को लेकर चर्चा करते थे। बचपन से ही साहित्य के प्रति गहरी रुचि रखनेवाले मणि मधुकर के व्यक्तित्व में स्वार्थता की झलक नहीं देख सकती। उनके व्यक्तित्व पर परिवारवालों का पूरा प्रभाव पड़ा है। उनकी माँ के प्रति उनका कहना है कि - "मेरी माँ ने मुझे बहुत

प्रभावित किया है। अपनी माँ से ज़्यादा सुन्दर और बहादूर, दिलेर औरत, मैंने कहीं नहीं देखी। इतने बहादूर! अकेली जैसे सारे संसार के सामने खड़ी हो जानेवाली और सुंदर से जहाँ तक मेरा तात्पर्य है अंदर की जो खूबसूरती, चीज़ों के प्रति जो लगाव, उनके प्रति उसके प्रतिक्रिया, उसने मेरे व्यक्तित्व को बहुत बनाया।"[3]

3.2 शिक्षा और कार्यक्षेत्र

मणि मधुकर की शिक्षा राजस्थान में थी। उन्होंने राजकीय लोहिया कॉलिज, चुरू से बी.ए की उपाधी प्राप्त की। इसके बाद राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से हिंदी में प्रथम स्थान लेकर एम.ए की उपाधी प्राप्त की। पत्रकारिता के प्रति उनकी रुचि अधिक होने के कारण उन्होंने एम.ए के उपरान्त पत्रकारिता की शिक्षा भी प्राप्त की। उन्होंने कई पत्रिकाओं का संपादन कार्य भी किया। 1966 में कल्पना नामक एक मासिक पत्रिका जो हैदराबाद से प्रकाशित किया था, इसके संपादन मण्डल में उन्होंने कार्य किया। जयपुर से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'अकथ' (1968) का संपादन भी उन्होंने किया। उन्होंने 1970 में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी की प्रमुख पत्रिका 'रंगयोग' का संपादन किया और साथ ही साथ ललित कला अकादमी की पत्रिका 'आकृति' का

संपादन भी किया। वे नेशनल प्रेस ऑफ इण्डिया (दिल्ली) के अध्यक्ष भी रहे, और संगीत नाटक अकादमी में भी कार्यरत थे।

3.3 मणि मधुकर : व्यक्तित्व

मणि मधुकर का व्यक्तित्व सामान्य नहीं बल्कि विशिष्ट है। उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव उन की रचनाओं पर पडा है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के रूपायन में उस व्यक्ति के परिवार, शिक्षा, सामाजिक परिवेश, राजनैतिक मान्यताएँ आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मणि मधुकर का व्यक्तित्व उपर्युक्त सभी संदर्भों से प्रभावित है। आगे उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जा रहा है।

3.3.1 विद्रोही

मणि मधुकर के मन में एक विद्रोही छिपा रहता था। उसके 'मणि मधुकर' नाम के पीछे एक विद्रोही चेतना छिपी रहती है। उनका मूल नाम मनीराम शर्मा है। मनीराम शर्मा कैसे मणि मधुकर बन गए, इसके बारे में डॉ.कृष्णा जाखड़ ने लिखा है-"मनीराम की विद्रोही चेतना ने यथास्थितिवाद को कतई स्वीकार नहीं किया, भले ही वह किसी रूप में हो। व्यवस्था का दिया हुआ नाम ही उसने बदल लिया और उसकी लेखनी ने खुरदरेपन की जगह नाम में मृसणता भर दी। हाँ, उनकी

लेखनी ने कथा में समाज के खुरदरेपन को सबसे अधिक बाँधा, मगर प्रेम के स्पन्दन ने उसमें मृसणता की तरलता बनाए रखी। उसकी प्रेमिका-पत्नी 'मणि' शायद वह प्रेममणि थी और वह खुद प्रेम में आसक्त 'मधुकर' था। इसी प्रतीक रूप में उसने नाम रखा- मणि मधुकर।"[4]

उनका विद्रोही व्यक्तित्व अधिक मुखरित है उनके कवि रूप में। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य साहित्यिक रूप में नहीं। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में नए प्रयोगों को अपनाना चाहा। इसलिए उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों पर प्रहार करके नए प्रयोगों की प्रतिष्ठा की। "मणि मधुकर साहित्य में भाषा को लेकर विद्रोही था, विषय-वस्तु के यथार्थवाद को लेकर विद्रोही था, आभिजात्य से शब्दों की मुक्ति का विद्रोही था, गाँव-शहरों की पगडंडियों से गुज़रते हुए सामंती अहंकार का विद्रोही था। सही मायने में वर्षों से चली आ रही विभाजक रेखाओं का विद्रोही था।"[5] उन्होंने साहित्य के प्राचीन रूढ़ियों पर इस तरह प्रहार किया है-

"शुरू करो, नयीगत शुरू करो और अपने बाजुओं
की ताकत को समेट कर रखो...।"[6]

राजनीतिक व्यवस्था के प्रति उनका मनोभाव निराशा का है। वे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध हैं, और आम जनता के पक्षधर हैं।

निम्न वर्ग के प्रति गहरी आस्था है। उनके प्रति होनेवाले अत्याचार से असंतुष्ट होकर मणि मधुकर विद्रोही बन जाता है-

"बोधिवृक्ष : हम उस देश के बासी है जिस देश में गंगा बहती है और जहाँ की नब्बे प्रतिशत जनता भूखी नंगी रहती है। इसलिए मैं भी अचकन के नीचे कुछ नहीं पहनता।"[7]

3.3.2 निर्भीक एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्व

मणि मधुकर निर्भीक एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्ववाले आदमी थे। उनकी यह निड़रता उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। उन्होंने जो कहना चाहा उसे बिना किसी दुराव-छिपाव के साथ कह दिया। यह उनकी रचनाओं में हम देख सकते हैं। उनकी रचनाएँ बनावटीपन से नहीं यथार्थवाद से उत्पन्न हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में भोगे हुए यथार्थ को उसी तीव्रता के साथ चित्रित किया। अन्याय और अत्याचार के प्रति उनका स्वर आक्रोश का है। उनका आक्रोश इसी तरह खूँज रहा है कि- "महोदय, तो फिर आपके पास किस चीज़ का हल है? जिन्हें आप पीने के लिए पानी तक नहीं दे सकते, उनसे वोट माँगने का हक आपको किसने दिया है, लेकिन गुलाबी शहर में मीलों तक गुलाबों की क्यारियाँ बनाकर अलग से जल-वितरण की विशेष व्यवस्था का दंभ भरनेवालों के

सामने इन सवालों की क्या औकात?"[8] उनके निर्भीक एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्व की झलक उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप में मिलती है।

3.3.3 यायावारी प्रवृत्ति

मणि मधुकर के व्यक्तित्व के प्रमुख गुण हैं - यायावारी प्रवृत्ति। उन्होंने कई यात्राएँ की हैं। उन यात्राएँ उनके साहित्यिक जीवन में बहुत लाभदायक हुई हैं। "वे निरन्तर परिस्थितियों से पलायन करते रहे हैं। उनके उपन्यासों में भी यह पलायनवादी दृष्टि नज़र आती है।"[9] कई तरह की सांस्कृतिक परिवेश से जुड़े होने के कारण उनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य जगत में एक अलग पहचान बनाई हैं। उन्होंने भाषा और शैली में नए प्रयोग करके हिंदी साहित्य जगत को समृद्ध किया।

मणि मधुकर 1980 में भारतीय सांस्कृतिक संबन्ध परिषद् द्वारा विश्व कविता समारोह में भाग लेने के लिए भारत के प्रतिनिधि कवि के रूप में यूगोस्लाविया भेजे गए एकमात्र कवि थे। विश्व की बहुचर्चित रंगशालाओं के अध्ययन के लिए 1986 में ही उन्होंने विदेश यात्रा की। "1981 ई. में मास्को में वाप एजेन्सी एवं नेशनल प्रेस इण्डिया के गठबन्धन हेतु मधुकर ने मास्को की यात्रा की। 1990 में U.S.S.R के कवियों की सांस्कृतिक संस्था एवं लेनिनग्राद की सांस्कृतिक संस्था ने

मणि मधुकर को आमन्त्रित किया। इसी बीच उन्होंने लंदन, इटली, आस्ट्रिया, ग्रीस, बुल्गारिया का भी भ्रमण किया।"[10]

3.3.4 समानता के आकांक्षी

समानता का दृष्टिकोण उनकी एक विशेषता है। समाज में व्याप्त ऊँच-नीचत्व की भावना को मिटाने की कोशिश उन्होंने उनकी रचनाओं द्वारा की। "मणि मधुकर एक समभावपूर्ण समाज की स्थापना करना चाहते हैं। एक इंसान अपनी शक्ति के बल पर दूसरे इंसान पर शासन करे अथवा स्वयं को श्रेष्ठ समझे यह भेदभाव नहीं होना चाहिए। मनुष्य-मनुष्य के बीच फासले और भेदभाव को मिटाना चाहिए, यह विचार मणि मधुकर के आधुनिक मूल्यबोध से अनुप्राणित है।"[11]उन्होंने ऐसे समाज के लिए कोशिश की है कि जहाँ स्त्री-पुरुष का समान अधिकार हो। इसकेलिए उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से आवाज़ उठाई। उन्होंने मानवीय मूल्यों को प्रधानता या महत्व देनेवाले और सभी मनुष्य समानता में जीनेवाले समाज का सपना देखा है। इसकेलिए उन्होंने अपने रचनाओं द्वारा निरंतर लडे।

"अ : हम सन्तरी से इतना डरते क्यों है? वह भी तो एक मनुष्य है।

द : वह एक मनुष्य है?

अ : और हम भी मनुष्य हैं।

ब : (शंकापूर्ण) हम भी, मनुष्य हैं।

अ : सब मनुष्य समान हैं।

स : अगर कहीं भेदभाव है, फासला है तो उसे मिटाना चाहिए।

अ : सन्तरी के बैठने के लिए स्टूल है और हमारे पास यह टाट का टुकड़ा।"[12]

3.3.5 प्रकृति के प्रति लगाव

उन्हें बचपन से ही प्रकृति से लगाव था। प्रकृति से प्रेरणा पाकर उन्होंने कई कविताएँ और कहानियों की रचना की। उनकी रचनाएँ अपनी मिट्टी की महक से ओतप्रोत हैं। उन्होंने अपनी मिट्टी से इतनी जुड़ी हुई है कि, उनका कहना है- "रेगिस्तान! राजस्थान की जो रेत है, भूरी बालू जो है उसने, मुझे लगता है कि जैसे मेरे संपूर्ण व्यक्तित्व में रेत की जो खूबसूरती या सुन्दरता है वह बराबर मौजूद है। और उसे अलग करके मुझे देख नहीं सकता।"[13]

मणि मधुकर का व्यक्तित्व कई विशेषताओं से भरा है। उनके व्यक्तित्व में उनके परिवार, उनकी मिट्टी और इन सबसे परे उनके यात्रा अनुभवों का प्रभाव बहुत हद तक देखा जा सकता है। उनकी

संवेदनशीलता एवं संयमता से भरपूर व्यक्तित्व उन्हें अन्य साहित्यकारों से अलग करता है।

3.4 मणि मधुकर : कृतित्व

बचपन से ही मणि मधुकर में साहित्य एवं पत्रकारिता के प्रति रुचि थी। उन्होंने समकालीन भारत की समस्याएँ, विडंबनाएँ और विसंगतियों को रेगिस्तान के वातावरण के माध्यम से बड़ी मार्मिकता के साथ हमारे सामने खड़ा कर दिया। उनकी रचनाओं में यथार्थ की भयानक चित्र खींचा गया है। पढ़ते वक्त हमें महसूस होगा कि हम उस रेगिस्तान में उन लोगों के बीच में है। उनकी रचनाओं में शोषित व पीड़ित लोगों का चित्रण अधिक है। मणि मधुकर के साहित्यिक व्यक्तित्व के बारे में डॉ.आलमशाह खान का कथन इसप्रकार है कि-"सब कुछ होकर भी, वह नहीं कुछ है- वह है मात्र एक निपट आदमी- संवेदनशील आदमी, जो मन से कवि, मस्तिष्क से कथाकार और व्यवहार से नाटककार। उसका कवि जब कथाकार से, कथाकार जब नाटककार से और नाटककार जब उसके यायावार से जा टकराता है तो रिपोर्ताज, यात्रा- संस्मरण और दूसरा भी सब कुछ सामने आता है- और जब यह सब कुछ एक दायरे में सिमट जाते हैं तो फिर एक आदमी सामने आ खड़ा होता है- मणि मधुकर।"[14]

मणि मधुकर का रचना प्रपंच

3.4.1 काव्य संग्रह

- खण्ड-खण्ड पाखण्ड पर्व
- घास का घराना
- बलराम के हज़ारों नाम
- पगफेरौ (राजस्थानी)
- सुधि सपनों के तीर (हिंदी और राजस्थानी)

3.4.2 कहानी संग्रह

- हवा में अकेले
- भरतमुनि के बाद
- एकवचन बहुवचन
- चुनिंदा चौदह
- त्वमेव माता
- हे भानमती

3.4.3 उपन्यास

- पत्तों की बिरादरी
- मेरी स्त्रियाँ
- पिंजरे में पन्ना

- सफेद मेमने
- सरकण्डे की सारंगी।

3.4.4 एकांकी संग्रह

- सलवटों में संवाद।

3.4.5 नाटक

- रसगंधर्व
- दुलारी बाई
- बुलबुल सराय
- खेला पोलमपुर
- इलाइची बेगम
- बोलो बोधिवृक्ष
- अंधी आँखों का आकाश
- इकतारे की आँख

3.4.6 नुक्कड़ नाटक

- नाच
- तीन पहाड़
- बोझ

- फंदे
- कब्र का किस्सा
- सब लोग

3.4.7 रेड़ियो नाटक

- बौना संसार
- अजनबी
- देश निकाला
- जकिया अंजुम

3.4.8 रिपोर्ताज

- सूखे सरोवर का भूगोल

3.4.9 संस्मरण

- आलोक-पर्व के बाद : फिर अन्धकार।
- उडती हुई नदियाँ।

3.4.10 जीवनी

- ज्योर्जी दिमित्रोव

3.4.11 संकलन

- पिछ्ला पहाड़ा
- भवि सुरस

3.4.12 संपादन

- अपने आसपास (राजस्थान के शिक्षकों की कहानियाँ)
- कोमल गान्धार (हिंदी लेखिकाओं की श्रेष्ठ प्रेम कहानियाँ)

3.4.13 बाल उपन्यास

- सुपारी लाल

3.4.14 बाल काव्य

- अनारदाना

3.4.15 मणि मधुकर का साहित्य - विशिष्ट परिचय

मणि मधुकर मुख्यतः नाटककार है। अलावा इसके उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, एकांकी, रिपोर्ताज, संस्मरण, जीवनी आदि की रचना भी की है। नाटककार के रूप में उनको अधिक ख्याति मिली है। लेकिन अन्य क्षेत्रों में उनका महत्व कम नहीं है।

3.4.15.1 नाटककार

रचनाधर्मी मणि मधुकर का सशक्त रूप नाटककार का है। उनकी रुचि नाटक में अधिक थी। समाज के साथ अधिक ज़ुड़ने के लिए उन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं से ज़्यादा नाटक को उचित माना है।

उनका कहना है कि "अगर आपको बहुत लोगों के साथ साझेदारी करनी है तो कविता, कहानी या उपन्यास से बात बननेवाली नहीं। आपकी बहुत सीधी हिस्सेदारी इनसे नहीं हो सकती। अगर कोशिश करते हैं, तो कहा जाता है कि कहानी या उपन्यास की स्थितियों से अलग होकर लेखक हावी हो गया है। कविता में आप बहुत अधिक मुखर होते हैं, तो कहा जाता है कि कविता सपाटबयानी में तब्दील हो गयी है। यह एक आरोप लगा दिया जाता है। आप जो साफ बात कहना चाहते हैं उसे बिम्बों और छवियों में उलझाकर कहें, यह अपने में विरोधाभास है। मुझे लगा कि अपने कवि, कहानीकार या उपन्यासकार को संभालकर रखते हुए नाटक लिखना चाहिए।"[15] मणि मधुकर जी स्वयं नाटककार मानते हैं।

'रसगंधर्व' मणि मधुकर का पहला नाटक है। यह कई बार मंचित किया गया बहुचर्चित नाटक है। इसकी विशेषता यह है कि इसके प्रकाशन के पूर्व इसका मंचन हुआ है। इसका प्रकाशन 1975 में हुआ। इससे पहले 1 दिसंबर 1973 में यह नाटक का मंचन मध्यप्रदेश कला परिषद द्वारा आयोजित रंग शिविर से रवीन्द्र भवन, भोपाल में ब.व.कारन्त के निर्देशन में हुआ। बंगला, कन्नड़ और मराठी जैसी भाषाओं में इसका अनुवाद एवं मंचन भी हुआ। उन्होंने इस नाटक में

छोटे-छोटे संवादों एवं रसीली भाषा द्वारा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को उजागर किया है। इस नाटक की कथावस्तु जेल की है। इस नाटक के आठ पात्र हैं- लेखक, अफसर, सन्तरी, राजकुमारी एवं अ, ब, स, द। इसमें अ, ब, स, द चार कैदी हैं। यह हमारी राजनैतिक व्यवस्था की ओर ठोस व्यंग्य एवं प्रहार करनेवाला नाटक है। इसमें ये चारों पात्र अ, ब, स, द जो आम जनता का प्रतीक हैं और राजकुमारी राजसत्ता का प्रतीक है, जिससे पाना सबकी अभिलाषा है। यह नाटक 'गुरुचरण सिंह चन्नी' के निर्देशन में नुक्कड़ नाटक के रूप में भी खेला गया है।

'बुलबुल सराय' मणि मधुकर का बहुचर्चित नाटक है। इसका प्रकाशन 1978 में हुआ है। इसका प्रथम मंचन कलकत्ता के कला मंदिर में 'अवन्तिका' द्वारा 7 मई 1976 को किया गया है। यह नाटक लोकनाट्य शैली में लिखा गया है। इसमें नट, नटी, क, ख, आ, ई आदि पात्र हैं। क, ख, आ, ई आदि नामहीन पात्र इस नाटक का प्रमुख पात्र हैं। इस नाटक के ज़रिए मणि मधुकर ने जो बातें उठाई हैं, वह आज भी प्रासंगिक है। साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित करनेवाले इस नाटक में शोषण का गंभीर चित्र उभारा है।

राजनीतिक क्षेत्र में होनेवाले अत्याचारों एवं रिश्तों में आनेवाली मूल्यच्युति आदि का चित्रण भी इसमें खींचा गया है।

'दुलारी बाई' मणि मधुकर का एक व्यंग्य नाटक है। इस नाटक में मणि मधुकर ने नई शैली एवं शिल्प का प्रयोग करके नाट्य संबन्धी पुरानी रूढ़ियों को तोड़ दिया। इस नाटक को आलोचकों ने पारसी रंगमंच से प्रभावित नाटक कहा है। इसका पहला मंचन 'अनामिका', कलकत्ता की ओर से कला मंदिर में अक्तूबर 1976 को किया गया है। भाषा की दृष्टि से नए प्रयोगों द्वारा आगे बढ़ाने वाले इस नाटक में दुलारीबाई प्रमुख पात्र है। यह एक प्रतीकात्मक नाटक है। यहाँ दुलारी बाई का पुश्तैनी जूता सामन्तवाद का प्रतीक है। वह उससे मुक्त करना चाहती है लेकिन वह इससे मुक्त न कर सकती।

मणि मधुकर का अगला बहुचर्चित नाटक है- 'खेला पोलमपुर'। इसका प्रथम मंचन 'अभियान' द्वारा 18 मार्च, 1975 को फाइन आर्ट्स थियेटर, नयी दिल्ली में हुआ। इस नाटक में शासक वर्ग के विलासपूर्ण जीवन, और उनके क्रूर व्यवहार को उजागर किया गया है। पोलमपुर के राजा लक्खीशाह अपनी प्रजा से क्रूर व्यवहार करनेवाले थे। उनकी पत्नी फूलकुँवर विलासपूर्ण जीवन बितानेवाली है। इस शासन व्यवस्था से परेशान है साधारण जनता। इस नाटक का एक सशक्त पात्र है समरू।

उनकी सहायता से पोलमपुर की जनता उस निर्दयतापूर्ण शासन व्यवस्था से मुक्त हो जाती है।

उनका अगला बहुचर्चित नाटक है 'बोलो बोधिवृक्ष'। राजनीतिक क्षेत्र में होनेवाले अत्याचारों एवं अनीतियों से लेखक असन्तुष्ट थे। इस नाटक द्वारा उन्होंने हमारे यहाँ के राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण किया है। राजनीतिक क्षेत्र की मूल्यच्युति कैसे आम लोगों के जीवन को दयनीय बना देती है इसका सशक्त उदाहरण है 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक। वोट जीतने के बाद फिर अपनी इच्छा के अनुसार का शासन है। महत्वाकांक्षी राजनीतिक नेता आम आदमी के जीवन की समस्याओं को हल करने या उनकी सेवा करने के लिए तैयार नहीं थे। सामान्य जनता अपने हक के प्रति जागरूक नहीं है। नेता गण उनका फायदा उठाते हैं। राजनीतिक क्षेत्र के कटु सत्य को उजागर करने में यह नाटक सफल हुआ है।

मणि मधुकर का 'इकतारे की आँख' नाटक कबीरदास को आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें कबीर से संबन्धित प्रमुख बातें और लोई, कमाल, पंड़ित, रैदास आदि महत्वपूर्ण व्यक्तित्व को भी चित्रित किया गया है। उन्होंने इस नाटक में कबीर के दोहों का भी प्रयोग किया है। डॉ.विजवाघ की राय में "यह बात बराबर खटकती रहती है कि नाटक में

कबीर का वह अक्खड, स्पष्टवादी, विद्रोही, क्रांतिकारी, आत्मविश्वास पूर्ण तेजस्वी, प्रखर व्यक्तित्व नहीं उभरता जिसके लिए वह प्रसिद्ध है यहाँ उनमें केवल संतरूप, संतवाणी ही मुख्य है।"[16]

'अंधी आँखों का आकाश' उनका एक बहुचर्चित नाटक है। इसमें उन्होंने लोकतांत्रिक देशों के जन सामान्य की समस्याओं को उभारा है। इस नाटक के पात्र अमित, उमा, भगतराम, ईश्वर, गीता, देवीदयाल आदि निम्न-मध्यवर्गीय लोगों के प्रतीक हैं। लेखक ने इस नाटक में बेरोज़गारी, महंगाई, अंधविश्वास आदि मुद्दों को उठाया है।

'इलाइची बेगम' उनका अगला प्रमुख नाटक है। शिल्प की नवीनता एवं विषय की भरमार से उनका नाटक हिंदी साहित्य जगत में विशेष स्थान प्राप्त किया है।

3.4.15.2 नुक्कड़ नाटककार

नुक्कड़ नाटक परंपरागत रंगमंचीय नाटकों से भिन्न एक ऐसी नाट्य विधा है, जो दर्शकों से अधिक निकट होता है। खुले रंगमंच के नाट्यविधा होने के कारण यह दर्शकों से सीधा संबन्ध रखता है। असल में नुक्कड़ नाटक दर्शकों से सीधा संवाद करता है। मणि मधुकर ने भी 1966-67 में नुक्कड़ नाटक किया है। नुक्कड़ नाटक के बारे में उनका

कहना है कि "अगर मुझे प्रत्यक्ष और सामयिक लड़ाई लड़नी होगी तो मैं नुक्कड़ नाटक लिखूँगा। जब मुझे इस लड़ाई को बहुत दूर तक ले जाना होगा, उसे एक समय के छोटे अंश से आगे फैलाकर दीर्घता मं उतारना होगा, तो मैं बुलबुलसराय जैसा नाटक लिखूँगा।"[17]

उनके प्रमुख नुक्कड़ नाटक हैं- 'नाच', 'तीन पहाड़', 'बोझ', 'फंदे', 'कब्र का किस्सा', 'सब लोग' आदि। ये सब 'सलवटों में संवाद' नामक एकांकी संग्रह में संकलित हैं। इन नुक्कड़ नाटकों द्वारा उन्होंने समाज में व्याप्त असमानता, नारी जीवन की विषमताएँ, पूँजीवादी व्यवस्था आदि मुद्दे उठाए हैं। हम समानता के बारे में घोर-घोर बताते रहते हैं। लेकिन इस समानता का मनोभाव हम कहाँ तक निभाते हैं यह सोचने की बात है। 'कब्र का किस्सा' में नारी को कब्र कहा गया है।

"सिपाही : कब्र से पूछूँ ?

बूढा : पूछो... क्योंकि औरत पहले भी एक कब्र थी।"[18]

3.4.15.3 एकांकीकार

मणि मधुकर एक सफल नाटककार के साथ-साथ एक सफल एकांकीकार भी है। 'सलवटों में संवाद' उनका एकांकी संकलन है। इसमें 'सलवटों में संवाद', 'टोपियाँ', 'छोटे-बड़े', 'जैसे जुगलबन्दी', 'नक़्शे में

निधन', 'दरवाज़ा' आदि एकांकी संकलित हैं। उनके एकांकी में दर्शकों को बहुत कुछ सोचने पर मज़बूर कर देते हैं। उनके एकांकियों में उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं का चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके साथ-साथ भ्रष्टाचार, मूल्य विघटन, नारी जीवन की समस्याएँ, भविष्य के प्रति आशंका आदि मुद्दों को भी सरल भाषा में चित्रित किया गया है।

'छोटे-बड़े' एकांकी के दो पात्र हैं- छोटे और बड़े। इन दोनों के संवादों से एकांकी आगे बढ़ता है। राजनीतिक नेताओं ने अपनी स्वार्थता की पूर्ती के लिए आम जनता को किस तरह वश में लाया है और किस तरह उससे लाभ उठाया है। इसका चित्रण इसमें किया गया है। उन्होंने समाजवादियों की स्वार्थ लिप्सा का पर्दाफाश किया है और समाजवाद के नाम पर लाभ उठानेवाले के बारे में व्यंग्य किया है- "समाजवादियों को एक ज़रुरी मीटिंग में लाने के लिए लाला जी ने हमें अपनी नीजी हवाई जहाज़ भी दिए हैं। वह तो चाहता है कि समाजवाद हवाई जहाज़ में बैठकर आए।"[19] इसके साथ-साथ राजनीतिक नेताओं के भाषण पर भी तीखा व्यंग्य किया गया है।

'सलवटों में संवाद' एकांकी में मानवीय रिश्तों के बीच आयी दरार, मूल्यहीनता, पारिवारिक विघटन आदि मुद्दों को उजागर किया गया है।

इस एकांकी में दो नामहीन पात्र हैं 'अ' और 'आ'। इस एकांकी में मणि मधुकर ने नारी जीवन पर प्रकाश डाला है। पुरुष वर्ग के क्रूर व्यवहार सहते हुए भी चुपचाप जीवन बिताना स्त्री की आदत पड़ गई है।

> "आ : अच्छे! गूँगापन भारतीय स्त्री का आभूषण है। पुरुष गूँगी स्त्रियों को बेहद पसंद करते हैं। वे बोलें नहीं, सिर्फ सुनती रहें। ज़िंदगी-भर सिर धुनता रहें। 'सुनना' और 'सिर धुनना' कितनी बंढ़िया तुक है।"[20]

युवापीढ़ी की रुचि आधुनिक मूल्यों की ओर तेज़ी से बड़ रही है। इसकी ओर भी लेखक ने इशारा किया है।

राजनीतिक नेताओं की स्वार्थपरता का उदाहरण है 'नक्शे में निधन' एकांकी। अधिकार पाने के बाद नेतागण अपनी वादाएँ सब कुछ भूलकर अपनी स्वार्थ पूर्ती के लिए दौड़ते हैं-

> "तीनों : लोग शिकार होते रहे।
>
> भीड़ में से एक : मंत्रियों को शिकार खेलने के सिवा और कोई काम नहीं है।"[21]

आम जनता को उलझनेवाली भूख मरी की समस्या, तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह आदि मुद्दों को मणि मधुकर ने यहाँ उभारा है।

एक 'चीख' से जुड़ी हुई कथा तंतु से आगे बढ़नेवाली एकांकी है 'टोपियाँ'। इसमें प्रतीकात्मक रूप में काली टोपी, संफेद टोपी और लाल टोपी का प्रयोग किया है। यहाँ काली टोपी नौकर और व्यापारी, सफेद टोपी नेता और आम जनता तथा लाल टोपी किसी ऑफिस की कर्मचारी आदि के प्रतीक हैं।

आज का समाज काफ़ी आगे बढ चुका है और समाज में कई तरह के बदलाव आ चुके हैं। लेकिन नारी के प्रति जो दृष्टिकोण पहले थे इसमें बदलाव नहीं आया। इसका मार्मिक चित्रण उन्होंने 'दरवाज़ा' एकांकी में किया है। उनके 'जैसे जुगलबन्दी' एकांकी में मानवीय मूल्यों के विघटन का चित्रण किया गया है।

3.4.15.4 कवि

साहित्य की सभी विधाओं में शोभित मणि मधुकर का प्रमुख रूप है कवि का। 'खण्ड-खण्ड पाखण्ड पर्व', 'घास का घराना', 'बलराम के हज़ारों नाम', 'पगफेरौ', 'सुधि सपनों के तीर' आदि उनके काव्य संग्रह हैं। इसमें 'पगफैरो' राजस्थानी काव्य संग्रह है, और 'सुधि सपनों के तीर' हिन्दी और राजस्थानी दोनों भाषाओं की कविताओं का संकलन है। उनकी कविताओं में एक विद्रोह का स्वर गूँज रहा है। उन्होंने साहित्य संबन्धी पुरानी मान्यताओं को तोड़कर नए प्रयोगों को अपनाया।

'घास का घराना' संकलन में उन्होंने वातावरण को अपने कलम का सहारा बनाकर अपने विचार को व्यक्त किया। उन्होंने इसमें ग्रामीण जीवन की समस्याओं को मुख्य विषय बनाया है। आम आदमी का जीवन संघर्ष, नारी शोषण, शोषक वर्ग की कुरीतियों का चित्रण, अधिकारियों का अन्याय आदि समस्याएँ इसमें चित्रित की है। 'बलराम के हज़ारों नाम' नामक कविता संकलन की कविता 'जूड़ा बाँधते हुए' में नारी जीवन की विषमताएँ और अपनी परिस्थितियों के दबाव के कारण स्त्र वेश्यावृत्ति स्वीकृत होने की स्थिति का चित्रण है। 'पालकी वाला' कविता में मेहनत करनेवाले लोगों के संघर्षपूर्ण जीवन की ओर इशारा किया गया है। 'लाल कमीज़' कविता भी आम जनता के जीवन पर आधारित है। इस संग्रह की अन्य कविताओं में उन्होंने मानव जीवन का संघर्ष, दरार, तनाव एवं हिंसात्मक मनोभाव आदि मुद्दे उठाए हैं।

3.4.15.5 उपन्यासकार

बहुआयामी रचनाकार मणि मधुकर ने अपनी अतुल्य प्रतिभा से उपन्यास जगत को संपन्न किया। उनके उपन्यास संख्या में विरल हैं, लेकिन विषय की संपन्नता से साहित्य जगत को संपन्न किया। उनके प्रमुख उपन्यास हैं- 'सफेद मेमने' (1971), 'पत्तों की बिरादरी' (1979), 'मेरी स्त्रियाँ' (1982) और 'पिंजरे में पन्ना' (1981)। उनके उपन्यासों के

कथानक रेगिस्तान से जुड़े हुए हैं। 'सफेद मेमने' उपन्यास में रेगिस्तान के जीवन की दयनीय स्थिति के मार्मिक चित्रण के साथ-साथ यौन समस्याएँ, संत्रास एवं अकेलापन किस तरह मानव जीवन को उखाड़ते हैं इन सभी बातों को उजागर किया गया है।

'पत्तों की बिरादरी' उपन्यास में देश विभाजन के फलस्वरूप होनेवाली घटनाओं का चित्रण है। इसमें मानवता का ह्रास, विभाजन के बाद सीमा पर जीनेवाले लोगों की बुरी हालत, एवं शरणार्थी शिविर में लोग कैसे नेताओं द्वारा वंचित होते हैं, इसका मार्मिक वर्णन अपनी सुरीली भाषा के ज़रिए हमारे हृदय को छूनेवाले ढंग से किया गया है। 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास में उन्होंने कलाकार की विवशता को उजागर किया है। कला किस तरह राजनीति के चंगुल में फँस गयी है इसका चित्रण इसमें किया गया है।

शिल्प एवं भाषा की दृष्टि से 'मेरी स्त्रियाँ' उपन्यास एक अनोखा प्रयोग है। लेखक ने इस उपन्यास में विभिन्न क्षेत्रों की स्त्रियों द्वारा देश के राजनैतिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रहार किया है। इसमें "स्वच्छन्द और विकृत यौन प्रवृत्ति का चित्रण मिलता है।"[22]

3.4.15.6 कहानीकार

कहानीकार के रूप में मणि मधुकर ने अपना अलग पहचान बनाया है। अपने जीवन से जुड़ी हुई भाषा से और शिल्प की नवीनता के कारण मणि मधुकर ने आधुनिक कहानीकारों में महत्वपूर्ण स्थान पाया। अपनी मिट्टी की महक उनकी कहानियों की विशेषता है। उनका पहला कहानी संग्रह है- 'हवा में अकेले'। इसमें राजस्थान के मरू अंचल के कष्टतापूर्ण जीवन का चित्रण है। अकाल के कारण किसान अपनी भूमि छोड़कर पलायन करना पड़ता है। उनका दूसरा संकलन है 'भरतमुनि के बाद'। इसमें "महानगरीय विषमताओं में जीनेवाले थके हारे लोगों की आकांक्षाओं का चित्रण मिलता है। इस संकलन में महानगरीय विडम्बनाओं को जीने वाले थके हारे, टूटे हुए लोग भी हैं जो अपने-अपने ढंग से आसपास के माहौल की व्यर्थता में अर्थ और शेष रह गयी आकांक्षाओं की तलाश करते हैं।"[23]

'एकवचन बहुवचन', 'चुनिन्दा चौदह', 'त्वमेव माता' आदि कहानी संग्रहों में उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ बेरोज़गारी एवं यौन समस्याओं को उजागर किया है।

3.4.15.7 रिपोर्ताज

मणि मधुकर ने अन्य विधाओं की तरह रिपोर्ताज में भी अपना अलग पहचान बनाया। रिपोर्ताज का उदय द्वितीय विश्व युद्ध का समय हुआ। रिपोर्ताज का संबन्ध आँखों देखी घटनाओं से है। 'सूखे सरोवर का भूगोल' उनके रिपोर्ताज का संकलन है। इसमें 1980 में राजस्थान में हुई अकाल का मार्मिक चित्रण खींचा गया है।

'पानी सिर्फ आँखों में है', 'जख्मों का जश्न', 'भूने हुए प्रेम का स्वाद', 'तितलियों के घर और जलते हुए पहाड़', 'सूखे सरोवर का भूगोल' आदि उनके बहुचर्चित रिपोर्ताज हैं। 'सूखे सरोवर का भूगोल' नामक रिपोर्ताज में उन्होंने अकाल से पीड़ित रेगिस्तान के जनजीवन का रोचक चित्र खींचा है। वहाँ की नारी की स्थिति, अंधविश्वास और आर्थिक विषमताओं से पीड़ित लोगों का चित्रण भी किया गया है। वहाँ की नारी की स्थिति बहुत दयनीय है - "वे किसी को नुकसान नहीं पहूँचाती, कुछ छोरियाँ लेकर चली जाती हैं और ढ़ाणी का बोझ हल्का हो जाता है।"[24]

'पानी सिर्फ आखों में हैं' नामक रिपोर्ताज में वे शासन व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी करते हैं। "महोदय, तो फिर आपके पास किस चीज़ का हल है? जिन्हें आप पीने के लिए पानी तक नहीं दे सकते, उनसे वोट माँगने का हक आपको किसने दिया है, लेकिन गुलाबी शहर में मीलों

तक गुलाबों की क्यारियाँ बनाकर अलग से जल-वितरण की विशेष व्यवस्था का दंभ भरने वालों के सामने इन सवालों की क्या औकात?"[25]

भुखमरे की समस्या इस अकाल का उपज है। पानी की समस्या मानव के रिश्तों पर किस तरह का प्रभाव डालता है, यह इस रिपोर्ताज में देख सकता है। अपनी मिट्‌टी की कलात्मक वर्णन करने में उनके रिपोर्ताज सफल हुए हैं।

3.4.15.8 संस्मरण

मणि मधुकर के बहुआयामी रचनाकार के रूप में उनके संस्मरणकार का रूप भी उभरकर आता है। 'आलोकपर्व के बाद फिर अंधकार' नामक उनके संस्मरण में उन्होंने आचार्य हज़ारी प्रसाद जी की जीवन की अंतिम समय का मार्मिक चित्र खींचकर जीवन का स्पष्ट रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उन्होंने हज़ारी जी की मृत्यु के बारे में इसी तरह कहा "एक आलोक-पर्व का अन्त हो गया।"[26] 'उड़ती हुई नदियाँ' में किसानों की समस्याओं का चित्रण है।

3.5 निर्देशक मणि मधुकर

नाटककार के साथ-साथ मणि मधुकर की एक ओर भूमिका निर्देशक का है। उन्होंने सिर्फ नाटक का लेखनकार्य नहीं इसका निर्देशन भी किया है। उन्होंने दूरदर्शन के लिए छोटी-छोटी सिनेमाओं को बनायी।

3.6 अनुवाद

उनकी कई रचनाओं का अनुवाद भी हुआ। असमिया, उड़िया, कन्नड़, गुजराती, डोगरी, पंजाबी, बंगला, मराठी जैसे देशी भाषाओं में और अंग्रेज़ी, जर्मन, पौलिश, फ्रेंच, रूसी जैसी विदेशी भाषाओं में भी उनकी रचनाओं का अनुवाद हुआ है।

3.7 पुरस्कार

साहित्यकार की ख्याती बढ़ने में उनकी पुरस्कृत रचनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। एक व्यक्ति या संस्था को अपनी उपलब्धियों के लिए दिया जानेवाला सम्मान है पुरस्कार। मणि मधुकर कई पुरस्कार से सम्मानित हुआ है। साहित्यिक क्षेत्र में उनका योगदान बहुत बड़ा है। उन्हें विभिन्न संस्थाओं के पुरस्कार से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के पुरस्कार मिला है।

- राजस्थानी काव्य संग्रह 'पगफेरौ' सन् 1975 में केन्द्रीय साहित्य अकादमी के सर्वोच्च पुरस्कार से सम्मानित किया।
- उपन्यास 'सफेद मेमने' के लिए प्रेमचन्द पुरस्कार मिला।
- उनका 'रस गंधर्व' नाटक के लिए कालिदास पुरस्कार, और 'ऑल इंण्डिया ड्रामा फेस्टिवल' में तीन बार पुरस्कृत।

- बुलबुल सराय नाटक के लिए महाराष्ट्र नाट्य मंड़ल के मामा वरेरकर पुरस्कार।
- मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का सेठ गोविन्ददास पुरस्कार से सम्मानित।
- उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान और दक्षिण साहित्य संगम कर्नाटक द्वारा पुरस्कृत हुआ।

3.8 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मणि मधुकर का व्यक्तित्व विशिष्ट है। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी रचनाओं में बहुत हद तक पड़ा है। साहित्य के लिए समर्पित उस महान सूर्य का अस्त 6 दिसंबर 1995 को हुआ।

संदर्भ ग्रन्थ

1. https://youtube/4dpgmnp7bbc
2. डॉ. ललिता अरोड़ा, मोहन राकेश एक अध्ययन, पृ.11
3. https://youtube/4dpgmnp7bbc
4. मधुमती, पृ.29
5. वही, पृ.29
6. घास का घराना, पृ.16
7. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.69
8. मणि मधुकर, पिछला पहाड़ा, पृ.230
9. डॉ. जितेश सिंह, मणि मधुकर के साहित्य में अभिव्यक्त युगबोध, पृ.18
10. वही, पृ.18
11. वही, पृ.233
12. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.59
13. https://youtube/4dpgmnp7bbc
14. डॉ. जितेश सिंह, मणि मधुकर के साहित्य में अभिव्यक्त युगबोध, पृ.17

15. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.6

16. डॉ.विजय वाघ, नाटककार मणि मधुकर, पृ.22

17. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.14

18. मणि मधुकर, सलवटों में संवाद, पृ.109

19. वही, पृ.22

20. वही, पृ.42

21. वही, पृ.91

22. डॉ. जितेश सिंह, मणि मधुकर के साहित्य में अभिव्यक्त युगबोध, पृ.88

23. वही, पृ.133

24. https://youtu.be/FnDQYzrCKjg?si=vG11Vk1B2vmegrxb

25. मणि मधुकर, पिछला पहाड, पृ.230

26. वही, पृ.263

चौथा अध्याय

मणि मधुकर की नाट्यभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

भाषा एकता का आधार है, और हमारी शक्ति है। भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त साधन है, जिसके माध्यम से हम अपने मन के भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। मनुष्य को अन्य प्राणियों से जो चीज़ अलग बनाती है, वह है उसकी भाषा। कल्पना, विचार, भाव, संस्कृति, आदान-प्रदान, संचार- इसी तरह जीवन संपूर्ण रूप से भाषा की अभिव्यक्ति के क्षेत्र में साकार हो जाता है।

भाषा का साहित्यिक रूप विशिष्ट होता है। साहित्यिक रचनाओं के संदर्भ में संप्रेषण या अभिव्यक्ति का साधन है भाषा। साहित्यकार अपनी संवेदनाओं को पाठकों तक पहूँचाने केलिए भाषा का प्रयोग करता है। कवि, कहानिकार, नाटककार या कोई भी साहित्यकार, साधारण आदमी की भाषा में नहीं लिखते, वह भावनात्मक भाषा का सहारा लेकर बोलता है, जैसे उसने कोई अलौकिक चीज़ खोज ली हो। जब भाषा को साहित्य पर लागू किया जाता है तो हम उसके अर्थ स्तर की सीमा को माप नहीं सकते। अक्षर और शब्द जीवंत हैं। वे कभी नहीं मरते। वाचन प्रक्रिया उसे जीवंत बनाती है। 'वाचन' एक क्रियात्मक प्रवृत्ति है। हम लिखे हुए या मृत अक्षर को देखते हैं। हम उसे हमारी बुद्धि के अनुसार अर्थ दिए जाते हैं। इसलिए ही प्रत्येक व्यक्ति पढ़ने से प्रत्येक अर्थ मिलता है। जब कोई पाठक कोई कहानी पढ़ता है तो वह अपनी कल्पना के अनुसार

कहानी के पात्रों और परिवेश को अपने मन में जीवंत कर लेता है। यहाँ वाचन और दृश्याभास ये दोनों प्रवृत्तियाँ पाठक के मन में एक साथ होती हैं, और उनको पूरा आनन्द मिल जाता है। ये दोनों नाटक में विद्यमान हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि साहित्य की सभी विधाओं में प्रमुख है नाटक।

विश्व रंगमंच का मूल्यांकन करनेवाले अरस्तु जैसे महापुरुषों ने बताया है कि नाटक सर्वोत्तम कला है। अन्य साहित्यिक विधाओं से नाटक को अलग करनेवाली विशेषता उनकी भाषा ही है। नाटक को पहले से भी दृश्यकाव्य की संज्ञा दी जाती है, इसीलिए नाटक की भाषा का महत्व दृश्य के साथ जुडे होने में है। नाटक का आकार संवाद रूप में है। इसी संवादात्मक रूप ही उनकी विशेषता है। संवाद भाषा ही है। नाटक की भाषा व्याकरणिक संरचना तक सीमित नहीं है। यह दृश्य, अभिनय और मंचीय तत्वों के साथ सार्थक होती है। कोई भी नाटक तब तक नाटक नहीं होता जब तक उसे मंच पर पदर्शित न किया जाए।

नाटक का भाषिक ढाँचा विशाल है। इसमें अचेतन वस्तु भी भाषिक माध्यम बन जाती है। नाट्यभाषा के इतिहास को परखने से, हमें यह मालूम होगा कि नाटक के प्रारंभिक काल से लेकर आज तक की यात्रा में कई तरह के परिवर्तन आ चुके हैं। नाटककारों ने भाषा के तौर

पर कई प्रकार के प्रयोग करके नाटक जैसी विधा को अग्रणी बना दिया है। ऐसे नाटककारों में प्रमुख है - 'मणि मधुकर'। उनकी जन्मभूमि राजस्थान है। इसलिए राजस्थान की उस रेगिस्तान का चित्रण उनकी रचनाओं में चमक रही है। रेगिस्तान की उस भीषण अवस्थाएँ और वहाँ के लोगों की रीति रिवाज़, समस्याएँ, पीड़ाएँ एवं अकाल से पीड़ित लोगों की वेदनाजनक स्थितियाँ, ये सब हमें भी उत्सुक बनाती हैं। असल में वे रेगिस्तान का साहित्यकार हैं।

वे आधुनिक हिंदी के प्रमुख हस्ताक्षर थे। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा जीवन के सभी क्षेत्रों को छू लिया है। वे अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रति जागरूक थे, और इन परिस्थितियों से गुज़रनेवाले जन जीवन की दयनीय हालत के प्रति भी सचेत थे। स्वतंत्रता के बाद भी हमारी इन परिस्थितियों में उतना आशाजनक परिवर्तन नहीं आया, जितना स्वतंत्रता के पूर्व। मणि मधुकर ने युगीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपने आसपास की दुनिया को भली भाँति समझकर आम आदमी के हक के प्रति उनको जागरूक कराने के लिए उनके साथ देकर लड़ा। इसलिए उनका साहित्यिक जगत यथार्थवाद से अधिक जुडे।

उनका साहित्यिक क्षेत्र विशाल है। उनका साहित्य साम्राज्यवाद एवं पूँजीवादी शोषण का आँखों देखा अनुभव है। वे अधिक संवेदनशील होने के कारण उनकी रचनाएँ यथार्थ से अधिक जुड़ी। मणि मधुकर ऐसे प्रयोगशील साहित्यकार थे, जिन्होंने अपनी अलग भाषा एवं शैली के कारण हिंदी नाट्य जगत को पूर्ववर्ती एवं परवर्ती युग से अलग बना दिया है। विषय वस्तु एवं प्रस्तुति की ईमानदारी नाटक को साहित्य के अन्य सभी रूपों से सशक्त बनाती हैं। इसी कारण नाटकों के माध्यम से अनेक प्रकार की समस्याओं एवं संघर्षों को सजीवता से प्रस्तुत किया जाता है।

मणि मधुकर ने समसामयिक संदर्भों से जुडे हुए विषय को अपने नाटकों के लिए चुना है। उनके नाटक आज के भारतीय परिवेश का ज्वलन्त उदाहरण हैं। उन्होंने अपने नाटकों द्वारा राजनीतिक कुरूपताओं को पर्दाफाश किया है। शोषण के विरुद्ध उनका आक्रोश है, उनके नाटक। आम आदमी के पक्षधर होने के कारण उन लोगों के जीवन की समस्याओं को ध्यान में रखकर उन्होंने अपने नाटकों में ऐसे पात्रों को जन्म दिया, जिन्होंने उस व्यवस्था के प्रति घोर विरोध किया था। अपनी प्रभावशाली नाटकों द्वारा उन्होंने आज के जन-जीवन को उलझनेवाली राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक आदि

समस्याओं को उजागर किया। इन मुद्दों को प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने ऐसी एक सशक्त भाषा ढूँढ निकाली, जो अन्यत्र नहीं देखी।

उन्होंने भोगे हुए यथार्थ को चित्रित करके अपने नाट्य साहित्य को संपन्न किया है। उन्होंने 'रसगंधर्व', 'खेला पोलमपुर', 'दुलारीबाई', 'बोलो बोधिवृक्ष', 'बुलबुल सराय', 'इकतारे की आँख', 'इलाइची बेगम', 'अंधी आँखों का आकाश' जैसे नाटकों की रचना की। उनके सभी नाटक रंगमंच के लिए लिखे गए हैं। उन्होंने अपने नाटकों में पात्र सृष्टि एवं संवाद को अधिक प्रमुखता दी। उनके नाटक सामान्य जन जीवन से अधिक ज़ुडे होने के कारण इसमें सामान्य जन जीवन से जुड़ी हुई भाषा का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

4.1 मणि मधुकर की नाट्यभाषा

प्रयोगशील रचनाकार मणि मधुकर का भाषाजगत अति विशाल है। उन्होंने राजस्थानी लोकनाट्य शैली को आधुनिक रंगमंच की नवीन पद्धतियों के साथ मिलजुलाकर भाषा का नवीनतम रूप प्रस्तुत किया। उनके नाटक लोकनाट्यशैली के प्रभाव के कारण एब्सर्ड नाटक से मेल खाते हैं। एब्सर्ड नाटक की सारी विशेषताएँ उनके नाटक में विद्यमान हैं। इसके बारे में उनका कथन है "हमारे यहाँ कई लोक कथाएँ ऐसी हैं जिनका नाट्यान्तर कर दें तो उनमें 'एब्सर्ड' मुहावरा नज़र आयेगा। यह

विसंगतिवाद मुहावरा हमारी ज़िंदगी का हिस्सा है। राजस्थान के कुचामणी ख्याल इसी तरह के हैं। पिंटर या एल्बी की तुलना में उगमराज के नाटकों में विसंगतिवादी तत्व अधिक मौजूद हैं। अगर आप उनके नाटकों के कुछ ग्राह्य अंश राजस्थानी में करें तो वे लोग कहेंगे इस तरह के बहुत सारे नाटक उगमराज ने किये हैं। उगमराज के नाटक जहाँ बहुत गहरी मार करते हैं, एक बेपर्दी बेचैनी पैदा करते हैं। यह सुविदा राजस्थानी भाषा में है और मैंने उन्हें हिंदी में लाना चाहा है।"[1] जनसाधारण को जागरूक करने के लिए उन्होंने जन सामान्य के जीवन से जुड़ी हुई लोकशैली को चुन लिया, जो वे आसानी से समझ सके। इसलिए उन्होंने लोक जीवन में प्रयोग करनेवाली मुहावरें, लोकोक्तियाँ, कहावतें और लोक कथाओं को नए ढंग से नाटकों में प्रयोग करके भाषा को एक नया जीवन प्रदान किया।

उन्होंने भाषाई तौर पर पुराने तरीकों को तोड़ दिया और नई खोजें की। उन्होंने नाटक का अंक विभाजन पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध नाम पर किया। उनकी भाषा पात्र, स्थिति, संदर्भ, कथानक की आवश्यकताओं की पूर्ती करके आगे बढी। जन सामान्य की भाषा से उन्होंने नाटक में सहजता लायी। उनकी भाषा में अभिनय की अपूर्व शक्ति छिपी हुई है। भावात्मक भाषा द्वारा चित्र खींचने की अपूर्व क्षमता उनमें है। सहजता

के साथ-साथ व्यावहारिकता भी उनकी भाषा की बड़ी विशेषता है। पात्र उनके जीवन में जो भाषा बोलती है उसी भाषा का प्रयोग नाटक में किया जाता है। उनकी भाषा में दृश्यता का गुण विद्यमान है। उन्होंने अपनी नाट्यभाषा में नए-नए प्रयोगों को अपनाया है।

4.1.1 प्रतीक

प्रतीक सूक्ष्म एवं अमूर्त अर्थ का प्रतिनिधित्व करता है। अवर्णनीय भावनाओं एवं संवेदनाओं को व्यक्त करने केलिए और उनको रूप देने के लिए साहित्य में प्रतीक का प्रयोग किया जाता है। प्रतीक व्यापक अर्थ को अपने में समाविष्ट करता है। प्रतीक कम शब्दों में व्यापक अर्थ प्रदान करता है। प्रतीक द्वारा सूक्ष्म मानसिक प्रतिक्रियाओं एवं संघर्षों को व्यक्त कर सकते हैं। प्रतीक का प्रयोग मानव मन में सुप्त कल्पनाओं को जागृत करने में सहायक होता है। जहाँ नाटककार अपने मन के विचारों एवं भावों को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ होता है, वहाँ वह प्रतीकों का सहारा लेता है। दर्शकों को गहराई से सोचने केलिए और उसे जागरूक बनाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग बहुत सहायक होता है।

मणि मधुकर ने अपने नाटकों में प्रतीक का प्रयोग प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। उनका प्रतीक जगत वैविध्य से भरा है। उन्होंने नाटक के

शीर्षक में भी प्रतीकात्मकता छिपा दी है। उनकी नाट्यकृतियों में एब्सर्ड नाटकों का प्रभाव देख सकता है। 'रसगंधर्व', 'बुलबुल सराय', 'बोलो बोधिवृक्ष' जैसे नाटकों में एब्सर्ड नाट्य़शैली की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। भाषा में प्रतीकात्मकता इस शैली की एक विशेषता है। उनका संवाद भी प्रतीकात्मक है। हरेक शब्द में भी प्रतीक झलक रही है। 'रसगंधर्व' नाटक कथानक विहीन नाटक है। इस नाटक के पात्र पूरी प्रतीकात्मकता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत हुए हैं। नाटक की शुरूआत एक अजीब सा माहौल बनाती है। खून, लड़ाई, राजा आदि शब्दों का प्रयोग एक उत्सुकता पैदा करती है। यहाँ लेखक ने जेल को हमारे देश के रूप में चित्रित किया है। लोकतांत्रिक देश होने के बावजूद भी वहाँ की जनता की स्थिति कैदियों के समान है। कैदी के रूप में वे आम आदमी का प्रतीक हैं। इसी संदर्भ में शीर्षक की सार्थकता होती है, गंधर्व शापग्रस्त होकर भूमि पर आते हैं। शापमुक्त होकर वे देवलोक की ओर वापस चले जाते हैं। यहाँ गंधर्व के समान शापग्रस्त जीवन बितानेवाले कैदियों का चित्रण आधुनिक संदर्भ में किया गया है। यहाँ राजकुमारी को राजसत्ता के प्रतीक रूप में चित्रित किया है। जिसको पाने के लिए सब उत्सुक हैं।

इस नाटक के आरंभ में चारों कैदी अपना-अपना औज़ार ढूँढ रहे हैं। यहाँ औज़ार स्वतंत्रता का प्रतीक है। इसमें लेखक ने लोकतांत्रिक

व्यवस्था को प्रतीकात्मक ढंग से सार्थक बना दिया है। उन्होंने राजकुमारी के माध्यम से प्रजातंत्र की ओर इशारा किया है।

"द : यह न भूलो कि मैंने तुम्हारा निर्माण किया है।

स : मैंने तुम्हारे रूप को सजाया है, सँवारा है।

ब : और मैंने दिन-रात एक कर तुम्हारे लिए सतखंडा महल बनाया है।

युवती : तुम लोगों ने मुझे अपना-अपना मत प्रदान कर विजयी बनाया, इसके लिए मैं तुम्हारी बहुत-बहुत आभारी हूँ। जनता की शक्ति ही मेरी शक्ति है।"[2]

'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में उन्होंने रंगसज्जा में भी प्रतीकात्मकता लायी है। यहाँ बिखरी हुई चीज़ें मानव मन के बिखरे हुए सोच और खोए हुए मानवीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। नारी शोषण की ओर इशारा करने के लिए उन्होंने 'कस्टर्ड' शब्द का प्रयोग किया है। यह प्रतीकात्मक शब्द तत्कालीन नारी जीवन की स्थितियों को दर्शाता है। इस नाटक में अंधकार को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ अंधकार के माध्यम से इस अंधे समाज को दर्शाया है। इसमें नाटककार को फाँसी की सज़ा सुनायी देती है। इस अवसर पर नीनी का कथन है- "आओ हम फैला दे पुनः अंधकार।"[3] 'इकतारे की आँख' नाटक में भी उन्होंने अंधकार को एक पात्र के रूप में स्वीकार किया।

संवाद में प्रतीकात्मक ढंग से गरीबी का पूर्ण चित्र खींचा है- 'खूले आसमान के नीचे रहना' और 'राष्ट्र की बचत में सहयोग देना' आदि कथन व्यंग्य के पुट के साथ प्रतीकार्थ प्रदान करते हैं। व्यंग्य शैली में लिखा गया नाटक है 'दुलारीबाई'। एक जूते को लेकर परेशानी झेलनेवाली दुलारीबाई का चित्र इस नाटक में देख सकता है। यहाँ जूता प्रतीक है, परंपराओं और रूढ़ियों का, जो दूषित है, जिससे मुक्त करने के लिए लोग चाहते हैं लेकिन इससे छुटकारा पा नहीं सकती।

मणि मधुकर के नाटक के पात्र निम्न एवं शोषित वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाले थे। 'इकतारे की आँख' नाटक का पात्र कबीर शोषित एवं दलित वर्ग का प्रतीक है। वह अपने समय की कष्टताओं एवं मुसीबतों के प्रति आवाज़ उठाता है। 'खेला पोलमपुर' का नायक समरूजाट सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। राजा लक्शीशाह जैसे क्रूर, निर्दयी शासक तानाशाह का प्रतीक है, जो साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी प्रवृत्तियों से साधारण जन जीवन नरकतुल्य बना देता है। उनकी पत्नी फूलकुँवर विलासिता का प्रतीक है। इस नाटक में चित्रित दलदल भी एक प्रतीक है, मौत को छुपानेवाला यह दलदल स्वार्थता का प्रतीक है। इस नाटक के अंत में चित्रित कथागायन द्वारा नाटक के प्रतीकार्थ को व्यक्त किया गया है। 'अंधी आँखों का आकाश' नाटक का 'सूखा पेड़' आर्थिक

विपन्नता का प्रतीक है। इस नाटक के सभी पात्र संघर्षरत आम आदमी का प्रतीक हैं।

मणि मधुकर जी के नाटक आज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक स्थितियों का प्रतीक हैं।

4.1.2 मिथक

मिथक एक जीवित सत्य है। मनुष्य के भीतर और बाहर की भौतिक शक्तियों का प्रतीकात्मक रूप है - मिथक। मिथक मानव की मनोदशा का प्रतिनिधित्व करता है। भाषा और मिथक के साथ अटूट संबन्ध है। इसलिए आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने वाक् और मिथक को परस्पर पूरक माना है। साहित्य में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है मिथक। अतीत में वर्तमान की अभिव्यक्ति मिथक की विशेषता है। इसलिए साहित्य में मिथकों की सहायता से मूल संवेदना को उजागर कर सकता है। प्रतीकात्मकता मिथक का प्रमुख तत्व है। पौराणिक चरित्रों में प्रतीकात्मकता समाहित होती है। मिथक की शक्ति इस प्रतीकात्मकता में निहित है। मानव को अपने अंतर्मन के संघर्ष एवं तनावपूर्ण स्थिति से मुक्त कराना मिथक का उद्देश्य है।

जब मिथक वर्तमान के साथ घुलमिल जाता है तो वह अधिक सार्थक हो जाता है और लोगों के मन में गहराई से उतर जाता है। इससे लोग प्रभावित होते हैं। यही रास्ता मणिमधुकर जी ने अपनाया है। उन्होंने 'बुलबुल सराय' नाटक में मायासुर की कल्पना की है। उनको इसकी प्रेरणा यक्षगान से ही मिली है। मायासुर की परिकल्पना के द्वारा लेखक हरेक मनुष्य के अंदर छिपा हुआ तानाशाह की ओर इशारा करते हैं, जो बड़ा भयानक, क्रूर और निर्लज्ज है। हमें अपने भीतर के भ्रम को समझने के लिए मायासुर की अवधारणा बहुत मदद की है।

उन्होंने मिथकीय संदर्भों एवं पात्रों के माध्यम से समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। नेताओं की अवसरवादी प्रवृत्तियाँ एवं राजनीतिक अस्थिरता को मिथक के माध्यम से सार्थक ढंग से चित्रित किया गया है।

"पेड़ : सुनो, सुनो, मैं हूँ बोधिवृक्ष।
मुझे समझो, जानो।
मैंने ही खींची थी सिद्धार्थ के अन्तर्मन में
ज्ञान की उज्ज्वल लकीर
और उन्हें खिलाई सुजाता की खीर।
उस खीर को समझो, लकीर को जानो
मुझे पहचानो।"[4]

मणि मधुकर जी ने 'बोलो बोधीवृक्ष' नाटक में नेताओं की पदालिप्सा को 'सुजाता की घीर' प्रसंग के माध्यम से व्यक्त किया है। 'सुजाता की घीर' का संबन्ध भगवान बुद्ध के जीवन से है। सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने मिथक का सहारा ले लिया है। उन्होंने महाभारत से संजय के दिव्यचक्षु के प्रसंग को लेकर समसामयिक राजनीतिक दुर्व्यवस्था की ओर प्रकाश डाला है।

"नकाब दो : न पढ़ी जाये आपसे, न शेक्सपियर की मम्मी से न वेदव्यास के बाप से।

दोनों : हे बोधिवृक्ष, महाभारत में संजय को मिले थे दिव्यचक्षु। उसने सुनायी अंधे धृतराष्ट्र को युद्धभूमि की कथा। हमें भी दिये थे, आपने जीरो-वाट के दिव्यचक्षु। किन्तु उनसे पढी नहीं जाती है आपकी लिखावट।"[5]

'रसगंधर्व' नाटक में गंधर्व की कल्पना करके राजनीतिक दुर्व्यवस्था के कारण नरकतुल्य जीवन बितानेवाले कैदियों का चित्रण किया गया है। गंधर्व की तरह शापयुक्त जीवन बितानेवाले कैदी अपनी जीवन स्थितियों में बदलाव लाना चाहते हैं। लेखक अपनी महत्वाकांक्षा की सफल अभिव्यक्ति के लिए पौराणिक तत्वों को अपनाना अधिक उचित समझते हैं।

4.1.3 काव्यात्मकता

काव्यात्मक भाषा का प्रयोग उन भावनाओं, विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है जिन्हें सामान्य भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। अर्थ एवं अनुभव की सृष्टि काव्यभाषा के माध्यम से अधिक आसान हो जाती है। मणि मधुकर जी ने अपने नाटकों में संदर्भ एवं पात्र के अनुकूल काव्यभाषा का प्रयोग किया है। मणि मधुकर के नाटकों में संवाद कभी-कभी कविता के रूप में हमारे सामने आता है। यह उनकी भाषा की विशेषता है। उनके रसगंधर्व नाटक में संवाद द्वारा बिम्ब उपस्थित करता है। यह उनके कवि होने के कारण ही होगा।

"युवती : (आँखें झुकाकर, लाज से) जिस प्रकार कुमुदिनी चन्द्रमा को, चातक पक्षी बादल को, कोकिल आम्रतरू को और प्रिया अपने प्राणधान को देखने के लिए तरसती है, उसी भाँति समूची रंगशाला तुम्हारे लिए उत्कंठित है, राजकवि।"[6]

इसमें एक काव्यात्मक लय गूँज रही है। इस नाटक के राजकवि का कथन काव्यात्मकता का उदाहरण है।

"लेखक : सम्पूर्ण राज्य में वसन्तोत्सव की तैयारियाँ हो रही हैं। चारों ओर कितना उत्साह, कितना आनन्द है!

वन-उपवनों में नाना प्रकार के पुष्प खिले हैं। शीतल, सुवासित पवन ने स्त्री-पुरुषों को उसी भाँति उन्मत्त बना दिया है, जैसे कामादिक्य ने तरू-लताओं के सौन्दर्य को। किन्तु प्रकृति की इस मनमोहिनी लीला में भी मेरा चित्त व्याकुल है, चिन्ता की मन्द-मन्द ज्वाला में झुलस रहा है। दिन में हर क्षण अनिष्ट की आशंकाओं से भरे विचार पीछा करते हैं और रात्रि में दुःस्वप्न!... "[7]

उन्होंने संवाद को गीत एवं कविता के रूप में प्रस्तुत करके मन के भावों को अभिव्यक्त करने की कोशिश की। 'बोलो-बोधिवृक्ष' नाटक में नाटककार को फाँसी देने के प्रसंग में नीनी, छीछी, काके, लाले द्वारा इसीतरह के संवाद का प्रस्तुतीकरण हुआ है। जो संदर्भ को प्रभावपूर्ण बना देता है-

"नीनी : याद आ रही है, तेरी याद आ रही है-

छीछी : तुझ को पुकारे मेरा प्यार, मेरे नाटककार!

काके : याद में तेरी जाग-जाग के हम, रात-दिन करवटें बदलते हैं-

लाले : भूली हुई यादो मुझे इतना न सताओ, अब चैन से रहने दो, मेरे पास न आओ-

नीनी : आ*ff*जा रे परदेसी, मैं तो कब से कड़ी इस पार-

काके : बेकरार करके हमें यूँ न जाइये, आपको हमारी कसम लौट आइये-

छीछी : अभी ना जाओ छोड़के की दिल अभी भरा नहीं-

लाले, नीनी : तुम्हें याद होगा, कभी हम मिले थे-

काके, छीछी : याद किया दिल ने कहाँ हो तुम, प्यार से पुकार लो जहाँ हो तुम-"[8]

श्रृंगार की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कविता रूपी संवाद का इस्तेमाल किया है। 'दुलारीबाई' नाटक के सूत्रधार का कथन इसका उदाहरण है।

"सूत्रधार : सुनूं तुमसे मधुर अलफ़ाज़, मीठी रस भरी बातों तो रोशन हों रूपहले दिन, महक उठें मेरी रातें।

दुलारी : तुमने ये जूते देखे हैं?

सूत्रधार : ये जूते फेंक दो कूडें में, फूल सजा लो जूडे में!"[9]

4.1.3.1 गद्य-पद्यमय भाषा

गद्य-पद्यमय भाषा द्वारा उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का दायरा विस्तृत किया।

"नटी : हाँ, कोहरा सुख है।

नट : तो हम भूल जायें कुरूपताओं को-

नटी : असंगतियों और प्रवचनाओं को-

नट : कोहरे में डूबे रहें-

क : चाहे ऊबे रहे-

ख : समय की पुकार है-

आ : कि दृश्यों पर नहीं, अदृश्य पर विश्वास करो-

ई : चलो, अब हम धुंध में सोयें-

ख : अपने पर हँसें, अपने पर रोयें-

आ : अपने को ढूँढें, अपने को ढोयें-

क : नाटक के बीज इसी बालू में बोयें!"[10]

'इकतारे की आँख' नाटक में कबीर ने गद्य-पद्य मिश्रित भाषा का प्रयोग करके नाटक की मूल संवेदना को उजागर किया है। इसमें कबीर के दोहे एवं पदों का भी प्रयोग किया गया है।

4.1.4 भजनशैली

संवाद में भजनशैली का प्रयोग उनकी विशाल रंग दृष्टि का परिचायक है। समसामयिक समस्याओं एवं विसंगतियों को आसानी से व्यक्त करने में भजनशैली सफल हुई। 'रसगंधर्व' नाटक में नाटक के अंदर और एक नाटक रचने के संदर्भ में लेखक ने इस शैली का प्रयोग किया।

"लेखक : भरत मुनि कह गये भाँड से, नाटक कैसे हो?

अ : तुलसीदास भजो भगवाना, नाटक कैसे हो?

ब : सूरदास मोहे आज उबारो, नाटक कैसे हो?

स : कहत कबीर सुनो भाई साधो, नाटक कैसे हो?

द : रहिमन मन की मन में रखो, नाटक कैसे हो?

युवती : मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, नाटक कैसे हो?

लेखक : नाटक लोकसभा में, नाटक शोकसभा में-

युवती : नाटक ब्रह्मपुरी में, नाटक इन्द्रपुरी में-

अ : नाटक नदी-नाव में, नाटक गाँव-गाँव में-

ब : नाटक अखबारों में, नाटक दरबारों में-

स : नाटक हरियाणा में, नाटक महाराणा में-

द : नाटक चूल्हे-चौके में, नाटक धोके में-

लेखक : नाटक दफ्तर में और नाटक चिड़ियाघर में-

सब : पर नाटक नहीं थिएटर में, तो नाटक कैसे हो?"[11]

इस शैली के माध्यम से लेखक दर्शकों के मन में यह जिज्ञासा पैदा करने में सफल रहे कि क्या होनेवाला है।

4.1.5 लय

संवादों का रोचक तत्व उनकी लयबद्धता है। दृश्य के साथ इसका घनिष्ट संबन्ध है। नाट्यभाषा के अर्थ को प्रभावशाली बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। मणि मधुकर ने संवाद में लय का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। उन्होंने चरित्र एवं स्थिति विशेष पर व्यंग्य उठाने के लिए लय का प्रयोग किया है। उनके संवाद में कविता की झलक मिलती है। इससे एक लय उत्पन्न होता है, जो नाटक में पूरा प्रभाव पैदा करता है। संबोधन के समय तूकांत शब्दों से उत्पन्न लय सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं, अंतर्मन के भावों को व्यक्त करने में सहायक होता है। संवाद में लय बदलने से अर्थ बदल जाता है। लय में आंगिक चेष्टाएँ भी समाविष्ट होने से नाटक अतुल्य बन जाता है। उन्होंने नाटक के आन्तरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए लय का प्रयोग किया है।

"अ : (वैसा ही करते हुए) आम बहुत मीठा है। सरोली आम, बीजू आम, हापुस और (सन्तरी की तरफ़ देखकर) लँगड़ा आम... !

सन्तरी : (उन्हें काम करते देखकर) श्रम ही जीवन है। श्रम ही मृत्यु है। जीवन और मृत्यु। मैं दार्शनिक होता जा रहा हूँ। लेकिन... (चिल्लाकर) श्रम ही संगीत कहाँ है? नेहरूजी कहते थे- श्रम आत्मा के तारों को

झंकृत करता है। सुनो! सुनो! श्रमजीवी साथियो, मैं
आज तुम्हारे श्रम की लय में अपने अन्तर्द्वन्द्व को
भूल जाना चाहता हूँ। श्रम का संगीत!"[12]

उन्होंने नाटक में वाचिक अभिनय के साथ लय का प्रयोग करके संवाद सार्थक बना दिया है। इस नाटक के आरंभ में 'अ' द्वारा किया गया संवाद जनसामान्य के भीतर की क्रांति की भावना जागृत करनेवाली थी।

"अ : (विक्षिप्त-सा) साले का खून चाबी-ताले का खून,
दाल में काले का खून।
कमली वाले का खून, इमली वाले का खून।
गोरे का खून, काँच-कटोरे का खून।
बिना पानी सब सून-खून-खून"[13]

इस संवाद का आंतरिक लय दर्शकों के मन में उत्सुकता पैदा करती है। इससे उन्हें जागरूक होने में मदद मिलती है। मणि मधुकर के नाटक का प्रत्येक शब्द और वाक्य लयबद्ध हैं।

4.1.6 तुक

वाक्य की सुंदरता बढ़ाने के लिए 'तुक' का प्रयोग किया जाता है। तुकांत शब्द से युक्त वाक्य सुनने में मीठे होते हैं। मणि मधुकर ने

अपने नाटकों में तुकांत शब्द का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। तुक से उन्होंने अपने नाटकों में एक अतुल्य लय पैदा किया है। यह उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है। उन्होंने तुकांत शब्द का प्रयोग करके संवाद को रोचक बना दिया है। तुक में उन्होंने शब्दों से लेकर ऐसा जादू किया है, जो वातावरण एवं स्थिति को प्रभावी बना देता है। 'भूचाल' शब्द से मेल खाने के लिए 'जाभूल' शब्द का प्रयोग उनके नाटक की मूल समस्या एवं संवेदना को उजागर करता है। उनके नाटकों में तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक विषमताएँ एवं विडम्बनाएँ सुरीली ढंग से अभिव्यक्त की गई हैं।

"छीछी: एबीसीड़ी- ईएफजी-

नीनी : उसमें से निकले गाँधीजी!

काके : गाँधीजी ने चरखा काता-

लाले : उसमें से निकले नेहरू चाचा!

छीछी: नेहरू चाचा ने पहनी खादी-

नीनी : उसमें से टपक पड़ी आज़ादी!

काके : आज़ादी का खेल निराला-

लाले : प्रगट भये फिर कनातवाला!"[14]

यहाँ आज़ादी के पूर्व एवं बाद की स्थिति का वर्णन है। दोनों स्थिति एक समान ही है। गाँधीजी ने जो सपना देखा, वह सफल नहीं हो पाया। स्वातंत्र्योत्तर भारत की आम जनता के जीवन में कोई आशापूर्ण बदलाव नहीं आया। यहाँ लेखक के मन के संघर्ष को दिखाया गया है। उन्होंने पात्र के संबोधन में भी तुक का पालन किया है। संदर्भोचित होने के कारण यह प्रयोग नाटक में पूरा प्रभाव डालता है। तुकांत संवाद का प्रत्येक शब्द अर्थपूर्ण होता है। यह सामान्य संवाद से अधिक सार्थक होता है। उन्होंने 'दुलारीबाई' नाटक में आद्यन्त तुकबन्दी युक्त संवाद का प्रयोग करके पूरे नाटक में एक लय पैदा किया है।

"ननकू : न ये चबर-चबर है, न कोई ताज़ा खबर है- अगर है, तो चारों ओर दुलारीबाई के जूतों की खटर-पटर है- दुलारीबाई जब इन्हें पहन कर चलती है तो राजा-महाराजाओं की तबीयत भी मचलती है। तेरे कदमों की आहट फट्ट से पहचान लेते हैं, हसीना, तेरी बांकी चाल पै हम जान देते हैं।"[15]

यहाँ दुलारी बाई और उसकी चप्पलों का उल्लेख तुकान्त शब्दों से किया गया है। ये तुकांत शब्द पूरे नाटक में एक आन्तरिक लय पैदा करते हैं। ये लय नाट्यभाषा को रोचक बनाते हैं। उन्होंने स्थिति एवं संदर्भ को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए शब्दों को लेकर नए आविष्कार की ओर चले। इसका उदाहरण इस नाटक में मिलता है।

"कल्लू : आहो, आहो जय जगत्तम्, कलकलकत्तम्,

जलथलहत्तम्, भूतलबत्तम्, तनमनम्तम्

लतगतसत्तमे धरफरफलम्, छलबलसत्तम्"[16]

यह प्रयोग नाटक के लिए अत्यंत उपयुक्त एवं पात्र के अनुकूल है।

4.1.7 व्यंग्यात्मकता

व्यंग्यात्मकता भाषा की शक्ति है। उनके सभी नाटक सत्ता की राजनीति की जीर्णताओं एवं सामाजिक अन्यायों की कटु आलोचना हैं। उन्होंने अपने व्यंग्य से दर्शकों को हँसाने की बजाय सोचने पर मज़बूर कर दिया। उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से समसामयिक सामाजिक-राजनीतिक सत्ता संबन्धी आलोचनाओं की ओर ध्यान आकर्षित कर दिया। उन्होंने तीखे व्यंग्य के साथ गठबंधन राजनीति के कुकर्मों की आलोचना की। और तीखी भाषा से PWD के मकान पर व्यंग्य किया है-

"अ : तभी एक छज्जा टूटकर गिर पड़ा और राजगीर उनके नीचे दबकर टें बोल गया। पी. डब्लू. डी. के ठेकेदारों से मकान बनवाओ, तो यही हाल होता है।"[17]

राष्ट्रसंघ की ओर इशारा करके उन्होंने तीखे स्वर में व्यंग्य किया है। इसके लिए उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिसके हरेक

शब्द भी सूई की तरह चुभनेवाले थे। एक सरकारी मामले पर निर्णय लेने में समय लगेगा-यह सूचित करने के लिए उन्होंने "तरबूज के बीजों की तरह दाँत गिर जा चुके" [18] ऐसे प्रयोगों से संवाद का लहज़ा और बढ़ा दिया है। यहाँ पारंपरिक रूढ़ियों एवं रीति-रिवाज़ों को तोड़ने की उनकी प्रयोगात्मक भाषा की ओर इशारा किया गया है। एब्सर्ड नाटकों की तरह हास्यपूर्ण संदर्भों एवं पात्रों को उनके नाटकों में भी देखा जा सकता है।

राजनीतिक दुर्व्यवस्था पर चोट लगाकर उन्होंने देश की बुरी हालत, निर्धनता एवं भुखमरी आदि को व्यंग्य के साथ उठाया है।

"बोधिवृक्ष : हम उस देश के वासी हैं, जिस देश में गंगा बहती है और जहाँ की नब्बे प्रतिशत जनता भूखी नंगी रहती है। इसलिए मैं भी अचकन के नीचे कुछ नहीं पहनता। सरासर दिगंबर।"[19]

गरीबी का स्पष्ट चित्र खींचने के लिए उनकी भाषा सफल हुई। परंपराओं को तोड़कर नए लाने की प्रवृत्ति उनके मंगलाचरण में देख सकती है।

4.1.7.1 मंगलाचरण

प्राचीलकाल में मंगलाचरण नाटक के प्रमुख अंग के रूप में माना जाता है। नाटक के पूरे होने में आनेवाली बाधाओं को दूर करने के लिए

की जानेवाली दिव्य स्तुति है मंगलाचरण। इसका उद्देश्य समृद्धि पैदा करना है। मणि मधुकर ने अपने नाटकों में मंगलाचरण का प्रयोग किया है। उन्होंने मंगलाचरण का प्रयोग पुरानी मान्यताओं से विचलित होकर नए ढंग से किया है। व्यंग्यात्मकता के साथ मंगलाचरण का प्रयोग करके उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को समृद्ध किया है। उन्होंने मंगलाचरण में नए प्रयोगों को अपनाया। उन्होंने देवताओं के स्थान पर दर्शकों की स्तुति करके दर्शकों को देवता का स्थान दिया और दर्शक की वेशभूषा के बारे में भी मंगलाचरण में इशारा किया है। 'दुलारीबाई' नाटक में इसका उदाहरण है।

"दर्शक देव पधारे-
धन्य हैं भाग्य हमारे!
धोती-कुर्ता, साड़ी-ब्लाउज, कोट-पैंट और टाई
पहन के आए आज यहाँ, देखेंगे- दुलारी बाई
छोड़के कारज सारे-दर्शक देव पधारे!
गोद में छोरा, कांधे छोरी, बगल में बीवी बिराजे
होठों में सिगरेट कि मुंह में पान का बीड़ा साजे
आँखों पै चश्मा धारे- दर्शक देव पधारे!
हे भाई-बहना और बाबूजी, हमारी लाज बचाना
यदि कुछ अच्छा लगे खेल में, ताली खूब बजाना
हम तो भक्त तुम्हारे-दर्शक देव पधारे!"[20]

'इकतारे की आँख' नाटक में मंगलाचरण को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें गणपति के स्थान पर ठाकुर साहब की वंदना करती है।

"अभिनेत्री : ठाकुर विनायक प्रसाद नारायण सिंह का एक आदेश आया है निर्देशक महोदय।

निर्देशक : हर वक्त आदेश- अध्यादेश क्या है

अभिनेत्री : नाटक के प्रारंभ में गणपति वन्दना के स्थान पर ठाकुर साहब की वन्दना की जाए।

निर्देशक : यह कैसे हो सकता है।

अभिनेत्री : हो गया है। नाटककार ने वन्दना लिखकर भेज दी है। सार सार को गहि लहै, थोथा देय उड़ाय विनायक प्रसाद नारायण सिंह में से हमने सिर्फ विनायक को ले लिया है और उसे गणेश वन्दना में फिट कर दिया है।"[21]

उनकी नाट्यभाषा की प्रयोगशीलता का सशक्त उदाहरण है, 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक का मंगलाचरण। इसमें पी.एम, डिप्टी पी.एम, एम.एल.ए और भारतेन्दु, मोहन राकेश जैसे साहित्यकारों की वेदना की गयी है। मंगलाचरण द्वारा उन्होंने कई मुद्दों को उठाया है, वे अब भी प्रासंगिक हैं।

"ओं रामभूमि शिलाय नमौ नमः

ओं बाबरी मस्जिदाय नमौ नमः

ओं महँगाई कष्टाय नमौ नमः

ओं लॉ-एंड-आर्डर नष्टाय नमौ नमः"[22]

इसी तरह समसामयिक समस्याओं को उजागर करके उन्होंने अपने नाटक के कथानक को अग्रणी बना दिया है। नए-नए प्रयोगों से दर्शकों एवं पाठकों को जागरूक करने में मणि मधुकर सफल रहे।

4.1.8 विराम

नाटक के संवादों में विराम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि इससे भाषा के अर्थ स्तर को और अधिक मज़बूत कर सकता है। मणि मधुकर ने अपनी नाट्यभाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए विराम का प्रयोग किया है। उन्होंने वर्तमान एवं भविष्य को जोड़ने के लिए विराम का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। मन के भावों को व्यक्त करने के लिए विराम बहुत सहायक होता है। संवाद को साँस के एक झटके में कहने से उसकी शोभा घट जाती है। भावाभिव्यक्ति के लिए विराम का प्रयोग करके उन्होंने संवाद को अर्थवान बना दिया है। 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में नाटककार फाँसी से कैसे बच गए, इसका वर्णन करते समय संवाद में प्रयुक्त विराम उत्सुकता जगाती है।

"बोधिवृक्ष : मामला एक नाटककार का था, इसलिए मैं सिचुएशन को ड्रामेटिक यानी फेंटैस्टिक बनाना चाहता था! (रूककर) इससे नाटककार में नाट्यकर्म में लोगों की नये सिरे से दिलचस्पी पैदा हुई-वरना टी वी सीरियलों ने थियेटर करने वालों को उपेक्षा, उपहास और उच्छ्वास का पात्र बना दिया है!.."[23]

उत्सुकता के साथ-साथ घबराहट को व्यक्त करने के लिए उन्होंने विराम का प्रयोग किया है। विराम का संदर्भोचित प्रयोग संवाद को अधिक सार्थक बनाता है। उन्होंने विराम का प्रयोग अलग-अलग संदर्भों में किया है। उन्होंने संवाद में विश्वसनीयता बढ़ाने के लिए और पात्रों के मानसिक संघर्षों को व्यक्त करने के लिए उन्होंने विराम का प्रयोग किया गया है। 'खेलापोलमपुर' नाटक में इसके लिए एक उदाहरण है -

"नट : आलोचक कहता नहीं, फरमाता है। (रूककर) यह नाटक उसे पसन्द नहीं आया-

नटी : क्योंकि समझ नहीं पाया।

नट : उसने फरमाया कि नाटक न ऐसा होना चाहिए, न वैसा होना चाहिए- लेकिन कैसा होना चाहिए, इसके बारे में चुप रहा।"[24]

इसीतरह अंतर्मन के भावों को व्यक्त करने केलिए विराम एक सशक्त माध्यम है।

4.1.9 मौन

विराम के अनुरूप मौन भी नाटक में भावाभिव्यक्ति का साधन है। जिन भावनाओं को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता उन्हें मौन के माध्यम से सफलतापूर्वक व्यक्त किया जा सकता है। मणि मधुकर ने अपने नाटक में मौन का प्रयोग बड़ी सफलता से किया है। उन्होंने लंबे कथनों के संदर्भ में मौन का प्रयोग बड़ी सार्थकता के साथ किया है।

"लेखकः ...... (अ, ब, स, द, की ओर देखकर चकित होता है।) तुम लोग इसतरह निश्चल, निःशब्द और निर्विकार क्यों खड़े हो? क्या तुम नहीं जानते कि राजकवि की हृदय आज कितना अशान्त है? क्या सोच रहे होंगे राजा भोज? क्या कल्पना कर रहे होंगे सभासद? .... (अ, ब, स, द की ओर मुड़कर) बोलते क्यों नहीं हो, तुम लोग? आज मुझे सहानुभूति की ज़रूरत है। कौन करेगा, मेरे तप्त अन्तःकरण पर मेघ-वृष्टि? क्या कोई नहीं? कोई भी नहीं (पल-भर रूककर) तो अन्ततः मुझे राजा भोज का कोपभाजन बनना ही पडेगा। ....(चेहरा बुझ जाता है। एक क्षण बाद अ, ब, स, द, से) जानते हो, मृत्यु किसे कहते हैं? तुम उत्तर क्यों नहीं देते? क्या तुम्हें मेरा स्वर सुनायी नहीं देता? क्या तुम अन्धे हो, गूँगे हो, बहरे हो?"[25]

यहाँ राजकवि के लंबे कथन के संदर्भ में नाटक के प्रमुख पात्र अ, ब, स, द मौन रूप से खडे होते हैं। यहाँ नाटककार मौन को और एक तल की ओर ले जाते हैं। क्योंकि अ, ब, स, द कैदी है उनका मौन, उनकी लाचारी की ओर संकेत करता है। यहाँ मौन पात्रानुकूल है। इस मौन के माध्यम से नाटककार आम जनता की स्थिति को स्पष्ट रूप से चित्रित करते हैं जो प्रतिक्रिया करने की क्षमता खो चुके हैं। उन्होंने 'मौन' के माध्यम से नाटक की मूल संवेदना को उजागर किया है। उनके नाटक में जो मौन है, वह दर्शक एवं पाठक वर्ग समझ पाता है।

मानव मन के भय, विवशता एवं प्रतिरोध को व्यक्त करने केलिए उन्होंने मौन का प्रयोग किया है। यह उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है।

4.1.10 अधूरा संवाद

अधूरा संवाद उनकी नाट्यभाषा की सबसे बड़ी विशेषता है। मणि मधुकर ने अधूरा संवाद को अलग ढंग से उपयोग करके अपने नाटक को अलग बना दिया है। पात्रों की भावगत संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अधूरे संवाद का प्रयोग बड़ी हद तक सहायक सिद्ध होती है। उन्होंने अपने नाटकों में अधूरे संवाद का प्रयोग एक विशेष रूप से किया है। उन्होंने एक पात्र द्वारा किए गए संवाद को अपूर्णता में छोड़कर

इसको पूर्ण करने का दायित्व दूसरे को देता है। इससे क्रोध, भय, अरुचि, विवशता, विरोध आदि भावों को सार्थक ढंग से व्यक्त किया जा सकता है।

दुलारी बाई नाटक में अधूरे संवाद एक श्रृंखला बनकर आते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि एक के बाद दूसरे गाई हुई एक कविता हो। इन अधूरे संवादों से उन्होंने नाटक में एक अनोखा लय पैदा किया है। जो नाटक के कथानक को पूरी सार्थकता के साथ आगे बढ़ाने में सहायता देती है। प्रश्न पूछने के लिए भी उन्होंने अधूरे संवाद का प्रयोग किया है-

"सूत्रधार : अगर कोई हो तुम्हारी तरह गरीब, तो सचमुच वो है बड़ा खुशनशीब। कंजूसी तुम्हारी आदत है। कंजूसी में जीना, खाना और पीना और रहना- तुम्हारे दादा ने एक मोची से जूते बनवाए और उन्हें ज़िन्दगी भर पहना- फिर तुम्हारे पिता ने सारी उम्र उन्हीं जूतों से काम चलाया- वे घिसते-टूटते रहे तो पैबन्द पर पैबन्द लगवाया- (चौंककर) अर्रे, दुलारी बाई, तुमने भी वही जूते...

दुलारी : हाँ, मैंने भी वही जूते पहन रखे हैं।...."[26]

प्रश्नोत्तर के अलावा आश्चर्य एवं अद्भुत भाव प्रकट करने के लिए उन्होंने अधूरे संवाद का प्रयोग किया है। किसी तरह की अनुभूति को

व्यक्त करने के लिए अधूरे संवाद का प्रयोग बहुत सहायक होता है। उन्होंने अधूरा संवाद द्वारा अपनी नाट्यभाषा को समृद्ध बना दिया है।

4.1.11 छोटे-छोटे संवाद

छोटे-छोटे संवाद उनकी नाट्यभाषा की बड़ी विशेषता है। छोटे-छोटे, चुस्त संवादों का प्रयोग उनके नाटक को रोचक बनाता है। उन्होंने संवादों के लिए ऐसे शब्दों को चुन लिया, जिससे नाटक की मूल भावों को उजागर कर सके। छोटे-छोटे संवादों के प्रयोग से नाटक के संदर्भोचित अर्थ का विस्तार करने में वे सफल हुए।

"द : (भयभीत) यह आवाज़?

स : बम गिरा है।

ब : गोली चली है।

अ : नहीं, कोई कुएँ में कूदा है।

द : लेकिन क्यों।

स : बीवी से डरकर। ......"[27]

कभी-कभी उनका संवाद एक शब्द मात्र की तरह सीमित होता है। लेकिन भावाभिव्यक्ति में यह काफी है। वातावरण का सृजन करने में उनका यह संवाद सहायक हुआ है।

4.1.12 दर्शकों से सीधा संवाद

जीवन की सच्चाइयाँ साहित्य के माध्यम से प्रतिबिंबित होती हैं। नाटक ऐसी विधा है जो जन साधारण के जीवन में सीधे उतरता है। इसलिए इसका गहरा प्रभाव जनसाधारण के जीवन पर पड़ता है। नाटक में दर्शकों से सीधे संवाद करने की रीति जनसाधारण को एकजुड़ करने के लिए और उन्हें जागरूक बनाने के लिए किया जाता है, और इसके माध्यम से समाज में बदलाव ला सकता है। यह उनकी नाट्यभाषा की विशिष्टता है।

रसगंधर्व नाटक के अंत में अ, ब, स, द और युवती प्रेक्षकों से बातें करती हैं, और प्रेक्षक भी उस नाटक में भागीदार बन जाते हैं। नाटक के अंत में प्रेक्षक पात्रों की तरह संवाद करते हैं। युवती द्वारा की गयी 'जयहिंद' शब्द को प्रेक्षक भी दुहराते हैं। इसी तरह प्रेक्षक भी नाटक का अंग बन जाते हैं। दर्शकों से सीधे संवाद करने से पहले दर्शकों को संबोधन करते हैं। जैसे, दर्शक भाई, दर्शक बहना आदि। 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में नाटककार को सज़ा देने के पहले के संवाद दर्शकों से सीधे करता है।

"काके, लाले, नीनी, और छीछी : हे माई-बाप दर्शक।

अब आपको क्या बताएँ, क्या सुनाएँ-

यह नाटक आधा ही लिखा गया था
आधा ही देखा गया था!
कि कुछ नाराज़-उत्तेजित-सत्ताभोगी-मानसरोगी लोग।
नाटककार को पकड़ कर ले गये!
....
इससे पहले कि नाटककार कुछ समझे-
सुना दिया गया फैसला....।"[28]

अपने नाटकों के मुख्य भागों को प्रस्तुत करने केलिए उन्होंने इसी तरीका अपनायी है। 'दुलारीबाई' नाटक में कल्लू द्वारा डंड़े का परिचय देने के अवसर पर और 'बुलबुल सराय' में कहानी सुनाने के अवसर में उन्होंने इसी तरीका अपनाई है। दर्शकों से सीधे संवाद करने के लिए उन्होंने 'कथागायन एवं टिप्पण' आदि प्रयोगों को अपनाया।

4.1.12.1 कथागायन

कथागायन पद्धति उनके संवाद की प्रमुख विशेषता है। कथागायन द्वारा उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को प्रभावशाली बना दिया है। उन्होंने अपने अधिकांश नाटकों में कथागायन का प्रयोग किया है। कथागायन द्वारा कथानक को गति मिलती है। उन्होंने अपने नाटक में दृश्य

परिवर्तन के लिए कथागायन पद्धति को अपनाया है। ये प्रेक्षकों से सीधे संवाद का माध्यम बन जाती है।

"भूल गई सब राग-रंग-सुख-साज, दुलारी बाई
पुरखों के जूतों ने ऐसी हालत बुरी बनाई
एक-एक पल में हज्जारों कष्ट भर गए, जूते
चैन नहीं दिन-रात कि नींद हराम कर गए, जूते
डूबी हुई सोच में वह तभी आई नदी किनारे
खड़ी रही चुप लगी देखने लहरों को मन मारे
हक्की बक्की सी थी उलझन और परेशानी में
जूतों वाला थैला उसने फेंक दिया पानी में
दूर बह गया थैला तब दिल ने कुछ राहत पाई
हाथ नदी मैया को जोड़ के चली दुलारी बाई।"[29]

कथागायन के माध्यम से अत्यधिक दुःख एवं संघर्षभरी बातें रोचक ढंग से सामने आती हैं। यहाँ दुलारी बाई को जिस बात परेशान कर रही है, वह है उनके पूर्वजों से मिला जूता। यह जूता बहुत सारी समस्याएँ पैदा करता है। इन जूतों से बचने की कोशिश और दुलारी की मानसिक स्थिति यहाँ दृष्टिगत होती है।

'खेलापोलमपुर' नाटक के उत्तरार्द्ध में कथा का प्रस्तुतीकरण के लिए कथागायन का इस्तेमाल किया गया है। कथागायन के साथ-साथ पात्र सिर्फ आंगिक अभिनय करके दिखाते हैं।

"(मंच पर हलका प्रकाश। समरू और जडियाँ आते हैं। फिर वे वही सब-कुछ करते-दरसाते हैं, जो कथागायन में कहा गया है।)

कथागायन : फिर नाटक चलने लगा
अँधेरे की घाटी में
जैसे चुपके-चुपके पहूँच गये जंगल में
समरू-जड़ियाँ।
जो नक़्शा भूतों ने बतलाया था समरू को
बहुत साफ़ था।
समरू ने वह पेड़ ढूँढकर
दूरदर्शिता दिखायी-
नज़र बचाकर जड़ियाँ की
जेव से निकाली तली पूरियाँ
और डालियाँ पर लटका दीं।..."[30]

मन के भावों, चिंता, एवं उलझनों को कथागायन के माध्यम से व्यक्त किया है।

4.1.12.2 टिप्पणी

उनकी नाट्यभाषा की और एक विशेषता है टिप्पण या टिप्पणी रूप में किसी घटना का विवरण करना। कथानक को आगे बढ़ाने के

लिए यह बहुत मददगार हुई। इसका प्रस्तुतीकरण दर्शकों से सीधे संवाद करने के रूप में होने के कारण दर्शक भी इसमें भागीदार है। उन्होंने पात्रों का परिचय देने के लिए टिप्पण का प्रयोग किया है।

> "चिमना : (दर्शकों से) है शिरीमान, सिर्फ इतना रखें ध्यान, कि अब मैं चिमना मांझी हूँ। भलों के साथ हूँ, बुरों से डरता हूँ- नाव और मछलियों के सहारे किसी तरह गुज़ारा करता हूँ।"[31]

यहाँ पात्र के चरित्र की विशेषताओं का भी वर्णन किया गया है। आगे क्या होनेवाला है, इसका संकेत देने के लिए टिप्पण का प्रयोग सहायक हुआ। इसीतरह पात्रों के आगमन लक्ष्य की सूचना देने के लिए भी टिप्पण का प्रयोग किया गया है। उन्होंने टिप्पण के प्रयोग से प्रेक्षकों के मन में उत्सुकता जगायी है। इसके साथ-साथ परिवेशगत बोध जगाने के लिए टिप्पण का सहारा लिया गया है। 'खेलापोलमपुर' नाटक के आरंभ में समरू जाट के प्रवेश के समय उनका कथन इसका उदाहरण है।

> "समरू : सूरज डूबा और लोग दड़बों में घुस गये। समूची बस्ती ने बुर्क़ा ओढ़ लिया। कितनी रात निकल गयी? तारे भी नज़र नहीं आ रहे हैं। लगता है, उनको बादलों ने अपनी जेब में डाल लिया है। (स्वयं से) बोलो समरू जाट, अब तुम क्या करोगे? कहाँ

जाओगे? नींद और थकान के मारे तुम्हारा बुरा हाल हो गया है, भई! (रूककर) लड़ाई खत्म हो गयी। जीतनेवाले जय-जयकार के साथ पहूँच गये महलों में, परकोटों में... और तुम – अंधेरे के सामने। .."[32]

उन्होंने अपने नाटक में दृश्य परिवर्तन के लिए टिप्पण का प्रयोग किया है।

4.1.13 स्वगत कथन

स्वगत कथन से पात्र अपने मन के क्षणिक-भावों को व्यक्त करता है। रंगमंच में एक पात्र अन्य पात्रों की उपस्थिति में सीधे उनसे कहे बिना कुछ कहता है, और अश्राव्य रूप में जो कहता है, उस कथन को स्वगत कहता है। स्वगत की विशेषता उनकी संक्षिप्तता है। मणिमधुकर ने अपने नाटकों में स्वगत का प्रयोग किया है। स्वगत कथन का संदर्भोचित प्रयोग उनकी नाट्यभाषा की सबसे बड़ी विशेषता है। उन्होंने पात्रों के मन की बेचैनी को दर्शाने के लिए स्वगत का प्रयोग किया है। उनका स्वगत दूसरे की बातों के प्रति घबराहट या ऊब पैदा करने के लिए स्वगत सहायक हुआ है।

"नीनी : (स्वगत) सेल्समैन की जुबान बेलगाम होती है। नमूना हाजिर है। "[33]

यहाँ सेल्समैन के रूप में बातें करने वाले काके का भाषण नीनी को परेशान करता है। लेखक ने उस समय के मनोभाव को स्वगत के माध्यम से व्यक्त किया है। पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ सूचित करने के लिए स्वगत का प्रयोग सार्थक हुआ है। 'दुलारीबाई' नाटक में दुलारी की कंजूसी दिखाने के लिए स्वगत का प्रयोग किया गया है।

"सूत्रधार : (स्वगत) कंजूस- मक्खीचूस से कौन पाए पार,
इसने तो कृष्णजी को भी बना दिया साड़ियों
का दुकानदार!"[34]

उन्होंने घृणा, नफ़रत, संदेह, आश्चर्य, षड्यंत्र और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए स्वगत का प्रयोग किया है। यह उनके संवादों को प्रभावपूर्ण बनाता है। स्वगत के माध्यम से पात्रों के मन की इच्छा को प्रकट करने में वे सफल हुए।

'खेला पोलमपुर' नाटक में समरू अपनी बुरी हालत को स्वगत के माध्यम से व्यक्त किया है। इसीतरह अतीत की बातें प्रेक्षकों तक पहुँचाने के लिए उन्होंने स्वगत का प्रयोग किया है। पात्रों की मनोदशा को अभिव्यक्त करने में उनका स्वगत सफल हुआ।

4.1.14 उक्तियों का प्रयोग

मणि मधुकर ने अपने नाटकों में महत् व्यक्तियों की उक्तियों एवं नारे का प्रयोग करके नाट्यभाषा को शक्ति प्रदान की है। इससे नाटक की मूल संवेदना को उजागर कर सकता है। 'रसगंधर्व' नाटक में महान नेता सुभाष चन्द्र बोस की 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा' वाली उक्ति का प्रयोग संदर्भ के अनुसार परिवर्तित करके इसीतरह किया है कि "तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें दो मुट्ठी चून दूँगी।"[35] इन दोनों उक्तियों से नाटककार अतीत एवं वर्तमान की ओर इशारा किया गया है। यहाँ स्वतंत्रता के पूर्व एवं बाद के राजनीतिक नेताओं के अंतर को दिखाया है। वर्तमान राजनीतिक नेताओं में पुराने नेताओं की तुलना में ईमानदारी, देशप्रेम, सच्चाई आदि गुण कम हैं। इसी प्रकार व्यंग्य के साथ समसामयिक स्थिति को व्यक्त किया गया है।

इसी तरह नारे का प्रयोग भी संवादों में देख सकते हैं। 'बुलबुल सराय' नाटक में 'ज़िंदाबाद मुर्दाबाद' का प्रयोग किया गया है, जो संदर्भ एवं स्थिति को प्रभावी बनाता है। यहाँ मायासुर और चोर को ज़िंदाबाद कहकर माता-पिता को मुर्दाबाद कह दिया है। यहाँ राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य रूप से चोट लगाई है।

4.1.15 उद्धरण का प्रयोग

नाटक में कथानक की सही संवेदना को उजागर करने के लिए पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्र एवं घटना के साथ उसे जोड़ना मणि मधुकर की अपनी विशेषता होती है। नाटक में इसका प्रयोग प्रतीकात्मक ढंग से किया गया है। उन्होंने पौराणिक घटनाओं को उद्धरण के रूप में प्रयोग करके संवाद को सार्थक बना दिया है।

"दुलारी : तो मैं गरीब-दुखियारी, और किसको याद करूँ? सुना है, जब दुःशासन दरोपदी की इज्जत उतारने लगा भरी सभा में, तो किरसन भगवान ने उसकी साड़ी इतनी लंबी कर दी कि कोई अन्त ही नहीं आया। हे नन्द के लाला, ब्रज-गोपाला। मैं भी-हर वक्त- तेरा नाम- जपती हुँ- मुझे-भी एक साड़ी-दे दे।"[36]

उन्होंने कथ्य को सार्थक एवं संवेदनशील बनाने के लिए महत् व्यक्तियों के नीति-वाक्यों का उद्धरण किया है। गाँधीजी और गौतम बुद्ध की उक्तियाँ और महाभारत एवं मनुस्मृति के नीति-वाक्यों को भी उन्होंने संवाद के साथ जोड़ दिया है। यह पाठक एवं दर्शकों को आसानी से प्रभावित करता है, और कथ्य को प्रभावशाली बनाती है। यह संवाद को अर्थवान बना देता है। कम शब्दों में अधिक अर्थ समेटने के लिए ऐसे संवादों का प्रयोग बहुत सहायक हुआ है।

4.1.16 दोहे का प्रयोग

मणि मधुकर ने अपने नाटक में दोहे का प्रयोग किया है। उनके 'इकतारे की आँख' नामक नाटक में कबीर के पद और दोहे का प्रयोग हम देख सकते हैं। इस नाटक का मूल पात्र कबीर है। उन्होंने कबीर के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया है। इसमें जाति-पाँति, वर्णव्यवस्था, अन्धविश्वास आदि के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए दोहे का प्रयोग किया गया है।

"गायक मण्डली: सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवै।"[37]

उन्होंने 'अंधी आँखों का आकाश' नामक नाटक में भी इसी दोहे का प्रयोग संवाद रूप में किया है। माली भगतराम के चरित्र को दिखाने के लिए अमित और उमा दोनों पात्रों में व्यंग्यात्मक ढंग से इस दोहे का प्रयोग किया है।

"उमा : (मुस्कुराकर) यह भी कैसा आदमी है।

अमित : भंगड़ी है। खाता है और सोता है।

उमा : सुखिया सब संसार में, खावै और सोवै

अमित : दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवै।"[38]

4.1.17 संस्कृत सुभाषित श्लोक का प्रयोग

मणि मधुकर ने संस्कृत श्लोकों का प्रयोग करके संवादों को प्रभावशाली बना दिया है। 'रस गंधर्व' नाटक के उत्तरार्द्ध में संस्कृत श्लोकों का प्रयोग देख सकता है। इसके पीछे उनकी प्रयोगशील दृष्टि है। इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं- अ, ब, स, द नामक चार कैदी। वे आम जनता को प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके द्वारा किए गए इसी तरह के संवाद के माध्यम से लेखक की भाषा संबन्धी प्रयोगशील दृष्टि को यहाँ हम देख सकते हैं।

"अ : मैं जो कहता हूँ, सच कहता हूँ, सच के सिवा कुछ नहीं कहता।

ब : अच्छा, तो अब सत्यवादिता पर एक प्रवचन हो गये। सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् ब्रूयात्सत्यमप्रियम्- सत्य बोलो, पर प्रिय बोलो। सत्य होते हुए भी सुननेवाले को अप्रिय लगे, ऐसा न बोलो।"[39]

यहाँ उनके विद्रोही मन यहाँ देखा जा सकता है। पुरानी मान्यताओं एवं रूढ़ियों के प्रति विरोद करनेवाली प्रवृत्ति की ओर यहाँ इशारा करती है।

4.1.18 उदाहरण का प्रयोग

संवाद को महत्वपूर्ण बनाने के लिए उन्होंने कई तरह के प्रयोगों को अपनाया है। संवाद में उदाहरण का प्रयोग करके उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को प्रभावशाली बनाया है। उन्होंने किसी एक बात को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण का प्रयोग किया है।

"नट : अच्छा? देवता भी खटमलों से डरते हैं।

नटी : हाथी चींटी से डरता है।

नट : जीभ डरती है दाँतों से

नटी : और स्त्री सफेद बालों से।"[40]

यहाँ बडे, छोटे से डरते हैं, यह दिखाने के लिए एसे उदाहरणों को दिया है। यहाँ नाटक के आलोचकों के प्रति इशारा किया गया है।

4.1.19 विशेषण शब्दों का प्रयोग

मणि मधुकर ने अपने नाटकों में कथ्य की मूल संवेदना को उजागर करने के लिए विशेषण का प्रयोग किया है। कथानक में जिज्ञासा एवं उत्साह का भाव पैदा करने में विशेषण का प्रयोग सफल हुआ। 'रसगंधर्व' नाटक में 'खून' शब्द के साथ संदर्भोचित विशेषण शब्दों का

प्रयोग नाटक के कथ्य को और भी प्रभावी बना देता है। नाटक में अनुकूल वातावरण का सृजन करने में विशेषण का प्रयोग सहायक हुआ।

"साले का खून चाबी-ताले का खून,
दाल में काले का खून।
कमली वाले का खून, इमली वाले का खून।
गोरे का खून, काँच-कटोरे का खून।
बिन पानी सब सून-खून-खून-
काला खून, गोरा खून।.... "[41]

यहाँ विशेषण शब्दों से नाटक के प्रमुख मुद्दों को उठाया है। 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में नाटककार की विशेषता दिखाने के लिए 'नाटक, फाटक, त्राटक' ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। यहाँ लेखक ने नाटक के आज की स्थिति की ओर इशारा किया है। विशेषण का प्रयोग करके उन्होंने नाटक के संवादों में अर्थ का विस्तार किया है।

4.1.20 समानान्तरता

समानान्तरता मणि मधुकर की नाट्यभाषा की और एक विशेषता है। समानान्तरता नाटक में संगीतात्मक वातावरण का सृजन करता है। समानान्तरता द्वारा उन्होंने संवाद को ऐसा मोड़ दिया कि संवाद में एक ही शब्द के बदलाव से अर्थ परिवर्तन होता है। संवाद के आरंभ और

अंत समान शब्द के होते हैं, और बीच के एक ही शब्द मात्र बदलाते हुए अर्थ परिवर्तन करता है। इससे संवाद में एक लय पैदा होता है।

"लेखक : हो सकता है, सब रंगशाला में चले गये हों।

अ : या धर्मशाला में।

ब : या गौशाला में।

स : जिसको जहाँ जाना है, वहीं जाएगा।"[42]

इसीतरह 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में नकाबपोश द्वारा नाटककार की विशेषता बताने के लिए 'तांत्रिक, मांत्रिक और यांत्रिक' ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। इससे एक लय उत्पन्न होता है। अर्थ की दृष्टि से संपन्न ये शब्द उस संदर्भ को और भी बेहतर बनाते हैं। यहाँ नाटककार की प्रवृत्ति को भी प्रतिपादित किया गया है।

4.1.21 पुनरावृत्ति

पुनरावृत्ति नाट्यभाषा की एक विशेषता है। इसका अर्थ है 'दोहराना'। हम अक्सर कहते हैं कि 'दोहराव उबाऊ है', लेकिन किसी भी लक्ष्य को पूरा करने में पुनरावृत्ति सहायक होती है। इसलिए नाटक में इस पुनरावृत्ति या दोहराव की प्रक्रिया अपनाती है। नाटक में यह पुनरावृत्ति नाट्यभाषा को समृद्ध बनाती है। पुनरावृत्ति सिर्फ एक तत्व

को दोहराना मात्र नहीं, बल्कि जिस संदर्भ एवं स्थिति में यह किया जाता है, यह पूर्ववर्ती तत्व से भिन्न एवं स्वतंत्र अर्थ प्रदान करता है। मतलब एक ही शब्द या वाक्य भिन्न-भिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थ देता है। मणि मधुकर ने सार्थक ढंग से पुनरावृत्ति का प्रयोग करके उनके नाटकों की मूल संवेदना को उजागर किया है। उन्होंने शब्द एवं वाक्य के अलावा दो पात्रों द्वारा किए गए संवाद को भी संदर्भोचित दुहराया है।

'रसगंधर्व' नाटक के आरंभ में 'अ' द्वारा किया गया 'खून' शब्द की पुनरावृत्ति एक समग्र प्रभाव पैदा करती है। स्थिति एवं माहौल को समझने के लिए यह पुनरावृत्ति बहुत सहायक हुई है। नाटककार 'खून' शब्द के साथ कई तरह के विशेषण शब्द जोड़कर अर्थ परिवर्तन करते हैं। यह नाटक के कथानक को सार्थक बनाता है। पात्रों की सामाजिक स्थिति या उनके जीवन की समस्याओं और पीड़ाओं को नाटककार इसीतरह व्यक्त किया है-

"स : हम कीड़े हैं।

द : नरक के कीड़े।"[43]

नाटककार पहले संवाद में सामान्य जन की लघुता की ओर इशारा करते हैं, और दूसरे में 'कीड़े' शब्द की पुनरावृत्ति करके इसके साथ 'नरक' शब्द जोड़कर कीड़े शब्द के अर्थ को और भी विस्तार करते हैं।

उन्होंने कभी-कभी संवाद में वाक्यांशों को दुहराकर पूरी सार्थकता के साथ प्रयोग किया है। विद्रोह की भावना को उभारने के लिए पुनरावृत्ति का प्रयोग किया गया है। नारागीत जैसे संवाद उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है। उन्होंने पहलेवाले संवाद के अंतिम भाग को दूसरे संवाद के आरंभ में दोहराकर संवाद को श्रृंखलाबद्ध बना दिया है। इसीतरह एक संवाद का अंतिम शब्द उस संवाद के जवाब के रूप में प्रस्तुत करके उन्होंने अर्थ-सीमा को बढाया है। समान शब्द होते हुए भी यह अलग-अलग संदर्भ में अलग-अलग अर्थ देता है। इसीतरह एक ही वाक्य को कई संदर्भों में विभिन्न भाव एवं अर्थ के साथ प्रस्तुत करता है।

"द : वह एक मनुष्य है?

अ : और हम भी मनुष्य हैं।

ब : (शंकापूर्ण) हम भी मनुष्य हैं।

अ : सब मनुष्य समान है।"[44]

लेखक यहाँ मानवीय मूल्य को प्रधानता देनेवाले समाज की स्थापना करना चाहते हैं। इसमें 'द' द्वारा किया जानेवाला प्रश्न- 'वह एक मनुष्य है?' इसमें लेखक संतरी की सारी- की सारी नीच प्रवृत्तियों की ओर इशारा करते हैं। इसमें घृणा का भाव है। लेकिन हमारी सामाजिक, राजनीतिक स्थिति, जो मानव जीवन को नरकतुल्य बना देती है, इसकी

ओर इशारा करके 'ब' शंका भाव से कहता है कि 'हम भी मनुष्य हैं।' यहाँ लेखक, 'सब मनुष्य एक है, कोई भेदभाव नहीं है' यह संदेश देते हैं। किसी एक कार्य का समर्थन करने के लिए संवाद में पुनरावृत्ति का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। इस संदर्भ में संवाद इतना छोटा हुआ कि वह एक ही शब्द तक सीमित होता है - जैसे, था, थे, थी का प्रयोग।

"सन्तरी : विवेक खो चुका था।

ब, स, द : था।

सन्तरी : मतिशून्य हो चुका था।

ब, स, द : था।

सन्तरी : समझदारी को साबून से धो चुका था।

ब, स, द : था।"[45]

उन्होंने एक दृश्य को विभिन्न संदर्भों में पुनरावृत्ति करके पात्र के जीवन संघर्ष एवं स्थिति को व्यक्त किया है। उन्होंने 'अंधी आँखों का आकाश' नामक नाटक में उमा की जीवन स्थिति की अभिव्यक्ति के लिए तीन संदर्भों में एक ही दृश्य को दुहराया है। इस दृश्य में सिर्फ़ पात्र बदलते हैं। उनके 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में 'नींद के मारे' ऐसे वाक्य

की पुनरावृत्ति द्वारा संवाद में गीत जैसा लय पैदा करता है। इसके द्वारा उन्होंने सोए हुए समाज को जागने का आह्वान दिया है।

"नीनी : मैं खाला को धकेल आयी, नींद के मारे
आंटी की मौज लगाय आयी, नींद के मारे
काके : हाय अल्ला बड़ा मेहरबान, नींद के मारे
लाल : हाय जय जवान जय किसान, नींद के मारे
छीछी : अये बांकी छोरी सावधान, नींद के मारे
नीनी : अये छोरे आजा कदरदान, नींद के मारे।"[46]

क्रोध, शंका, नफरत आदि भावों को व्यक्त करने के लिए उन्होंने पुनरावृत्ति का सहारा लिया है। इसके साथ-साथ एक संदर्भ एवं दृश्य के पुनर्निमाण करने के लिए भी उन्होंने पुनरावृत्ति का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने नाटकों में पुनरावृत्ति द्वारा समय का बोध किया है। पात्रों के मानसिक संघर्ष को उन्होंने पुनरावृत्ति द्वारा व्यक्त किया है।

"क, ख : सब कुछ, सब कुछ, सब कुछ-
आ, ई : कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं-
नट : क्या हुआ? क्या हुआ?
क, ख : सब कुछ, सब कुछ, सब कुछ-"[47]

4.1.22 संबोधन

नाट्यभाषा में संबोधन का महत्वपूर्ण स्थान है। भरतमुनी ने अपने नाट्यशास्त्र में संबोधन का विस्तृत विवरण दिया है। आज के नाटक में संबोधन की रीति बदल गयी है। संबोधन का प्रयोग मणि मधुकर ने विशेष ढंग से किया है। नाटक की मूल संवेदना को उजागर करने वाला संबोधन उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है। संदर्भ एवं स्थिति को ध्यान में रखकर उन्होंने अपने नाटक में संबोधन का प्रयोग किया है। संबोधन के समय भी उन्होंने अपनी प्रयोगशील दृष्टि अपनाई। उन्होंने अपने नाटकों में सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करने के लिए संबोधन में भी परिवर्तन लाया। उन्होंने अपने नाटक में दर्जी के लिए 'कैंची-मास्टर', राजगीर के लिए 'चूने के चींचडे', अफसर के लिए 'कनखजूरा' ऐसे प्रतीकात्मक संबोधन के ज़रिए अपना विद्रोह प्रकट किया है। इसी तरह संबोधन कथ्य की गहराईपन एवं संवेदना को उजागर करने में सक्षम है।

उन्होंने अपने नाटकों में किए गए सभी संबोधन उनके क्रान्तिकारी मनोभाव का द्योतक है। उन्होंने 'चुगरखोर', मक्कार, हकलू, टकलू, जमूरा, चिरकुट, निपूते आदि प्रतीकात्मक संबोधन द्वारा उनकी अभिव्यक्ति की सीमा को विस्तार दिया। इसीतरह उन्होंने पात्रों को

संबोधित करने के लिए संदर्भोचित एवं प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने मुहावरेदार शब्दों का भी इस्तेमाल करके संबोधन को अलग बना दिया। जैसे,

"अ : (यकायक चिल्लाकर)
जागो राजा भोज
जागो गंगू तेली
खून, चारों तरफ़ खून-"[48]

यहाँ 'कहाँ राजा भोज कहाँ गंगूतेली' वाली कहावत को 'अ' द्वारा अन्य पात्रों को संबोधन करने के लिए किया गया है। यहाँ राजा भोज से मतलब बड़ा और गंगू तेली से मतलब छोटा। यहाँ नाटककार ने समाज के हर स्तर के लोगों को, वे छोटे या बडे हो, जागने की चेतावनी दी है। संबोधन में इसीतरह के नए प्रयोग करके उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को सार्थक बना दिया है।

4.1.23 नामहीन पात्र

मणि मधुकर के नाटक को विशिष्ट बनानेवाली चीज़ उनकी प्रयोगशीलता है। उन्होंने नाटक की परंपरागत ढाँचे को तोड़कर ऐसे पात्रों को जन्म दिया, जो उनके नाटक की भाषाई ढाँचे को विस्तार करने में

सुयोग्य है। उन्होंने अपने पात्रों को प्रत्येक नाम न देकर 'अ, ब, स, द, ह, आ, ई, क, ख, युवती, अफ्सर' आदि कह दिया है। उनकी इस प्रवृत्ति एक ओर प्रतीकात्मक रूप में सामान्य जन जीवन के साथ जुड़ाती है तो दूसरी ओर से एक विशाल अभिव्यक्ति पक्ष को दर्शाती है।

उनके 'रसगंधर्व' एवं 'बुलबुल सराय' नामक नाटक के अधिकांश पात्र नामहीन है। इन नाटकों में देश को बंदीगृह और सराय के रूप में चित्रित किया गया है। बंदीगृह में सब कैदी एक समान हैं। किसी को कोई विशेषता नहीं। सब समान तरह का जीवन बितानेवाले कैदी हैं। इस निरर्थक देश में कैदियों के समान अस्तित्वहीन जीवन बितानेवाले के नाम का भी कोई अस्तित्व नहीं।

"क, ख	:	हम नामहीन हैं।
नट	:	क्यों है ऐसा?
क, ख	:	क्या करें भाई, इमरजेन्सी के बाद यह हिम्मत नहीं रही कि किसी से कह सकें- हमारा भी नाम है।"[49]

इन नामहीन पात्रों के ज़रिए उन्होंने नाटक की मूल संवेदना को उजागर किया है।

4.1.24 फंतासी

फंतासी का प्रयोग उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है। यह कथ्य को सार्थक बनाता है। तत्कालीन समस्याओं को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने अपने नाटक में फंतासी का प्रयोग किया है। सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों के प्रति जनसाधारण को जागरूक बनाने के लिए उनके फंतासी का प्रयोग मददगार हुआ। उनके नाटक में फंतासी संवादों का प्रयोग देखने को मिलता है।

"सूत्रधार : (अभिनेता से) तुम लोग यहाँ क्यों खडे हो? मेरे और हुस्नबानो के बीच खामखाह अडे हो! मुंह मत बनाओ, यहाँ से दफा हो जाओ। (अभिनेताओं के जाने पर अभिनेत्री से) हां तो डार्लिंग, अब बढाता हूँ मैं- तुम्हारा ज्ञान, बतलाता हूँ कि कैसे चल रही है आजकल देवताओं में खींचतान-सत्ता हथियाने की होड देखो कि विष्णु जनता पार्टी के नेता हो गए हैं, शिव-शंकर सफेद कांग्रेसी। और ब्रह्माजी एक नई-निराली तान छेड़ रहे हैं यानी इंडिपेन्डेन्ट की हैसियत से दोनों दलों की बखिया उधेड़ रहे हैं।"[50]

मणि मधुकर ने फंतासी संवादों के माध्यम से अपनी नाट्यभाषा को समृद्ध बना दिया।

4.1.25 पैरोड़ी का प्रयोग

व्यंग्य के साथ किसी की शैली को नकल करना पैरोड़ी है। मणि मधुकर ने अपने नाटक में पैरोड़ी का प्रयोग करके नाटक की मूल संवेदना को उभारा है। फंतासी की तरह पैरोड़ी भी उनकी नाट्यभाषा का नवीनतम प्रयोग है। मणि मधुकर ने साधारण संवादों से प्रकट न की जानेवाली बातों को पैरोड़ी के माध्यम से प्रभावी बना दिया है। उन्होंने संवाद में स्थिति एवं संदर्भ को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए पैरोड़ी का प्रयोग किया है। 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक के पूर्वाद्ध में पैरोड़ी का प्रयोग किया गया है। पूरे देश को एकता के सूत्र में बाँधनेवाली 'मिले सुर मेरा तुम्हारा'... नामक राष्ट्रीय एकता गीत की पैरोड़ी का प्रयोग संदर्भोचित करके वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक स्थिति पर घोर व्यंग्य किया गया है। गठबन्धन की राजनीति में बडे राजनीतिक दलों को शासन संचालन में कई तरह की परेशानियाँ झेलनी पड़ेगी। गठबन्धन राजनीति के अटपटापन को उन्होंने पैरोड़ी के माध्यम से व्यक्त किया है।

"गायन : मिले ना सुर मेरा-तुम्हारा
तो सरकस चले हमारा।
सुर की नदिया-शेर और बकरी
पानी पिएँ संग-संग

बेसुर बन कर राज करें हम-

गद्दी पर हुड़दंग

ओ*ff* बदलें अपना ढंग

जिसको जोड़ें, उसको तोड़ें-

सब टूटे और बिखरे!

ओं जय जगदीश हरे! ...."[51]

यहाँ देश की बदहालत को दर्शाने के लिए और इसके प्रति जनता को जागरूक कराने के लिए उन्होंने पैरोड़ी का प्रयोग किया है।

4.1.26 मुखौटे का प्रयोग

नाटक में पात्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए मुखौटे का सार्वभौमिक रूप से उपयोग किया जाता है। मुखौटा नाटक में किसी अन्य व्यक्तित्व को स्थापित करने के लिए किया जाता है। मुखौटा द्वारा सच्चाई को प्रस्तुत कर सकता है। साथ ही साथ अंतर्मन के भावों को भी व्यक्त कर सकता है। मणि मधुकर ने अपने नाटक में मुखौटे का प्रयोग किया है। अपने 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में ऐसे दो पात्रों को प्रस्तुत किया है- नकाबपोश एक और नकाबपोश दो। दोनों क्रमशः खुफिया ब्यूरो का चेयरमैन एवं नवनियुक्त प्रेस एड़वाइज़र की भूमिका निभाती हैं। इसीतरह उन्होंने 'बुलबुल सराय' नाटक में मुखौटे का प्रयोग

किया है। उन्होंने किसी पात्र का परिचय देने के लिए मुखौटे का प्रयोग किया है।

4.1.26.1 कठपुतली का प्रयोग

कठपुतली एक प्राचीन नाटकीय खेल है। यह लोकनाट्य की एक शैली है। मणि मधुकर ने अपने नाटक में कठपुतली का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। उन्होंने मुखौटे के माध्यम से कठपुतली का प्रयोग किया है। कथानक को सार्थक बनाने में यह बहुत मददगार होती है। कठपुतली का मुखौटा धारण करके दो पात्रों द्वारा नाटक के प्रमुख मुद्दों को उठाया गया है। कठपुतलियों के प्रयोग से उन्होंने समसामयिक मुद्दों पर चोट लगाई है। यह उनकी नाट्यभाषा की सबसे बड़ी विशेषता है।

"पुतला, एक : काठ के पुतले, कठ के पुतले, काठ के पुतले।

पुतला, दो : बन कर मनुष्य...

पुतला, एक : करें भी क्या हम...

पुतला, दो : छल और भ्रष्टाचार?

पुतला, एक : ना-ना बाबा, इससे तो अच्छा है अपना-

पुतला, दो : पुतलों का संसार।

पुतला, एक : हम निष्प्राण...

पुतला, दो : मगर जिनमें है प्राण...

पुतला, एक : फिरें दिन-रात झूठ में डूबे-

पुतला, दो : धन के पीछे मारे-मारे...

पुतला, एक : हाय रूपैया, हाय रूपैया-

पुतला, दो : रूपये में ही सदा बसत है प्रभुजी, प्राण हमारे।

पुतला, एक : कहाँ छुपाएँ काले धन को-"[52]

जन जीवन को नाटक से अधिक जुड़ाने के लिए उन्होंने लोगों से जुडी हुई कला का प्रयोग नाटक में किया है। यह उनकी नाट्यभाषा की अनुपम विशेषता है। यहाँ पुतला और मनुष्य दोनों के जीवन को तुलना करके पुतलों का संसार अच्छा बताया गया है। यहाँ मानव जीवन के छलकपट और भ्रष्टाचार को उजागर किया गया है। मणि मधुकर ने पात्रों का परिचय देने केलिए कठपुतली का प्रयोग किया है। दुलारीबाई नाटक में दुलारी के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए कठपुतलियों का प्रयोग किया गया है।

"काठ के पुतले, कठ के पुतले, आते हैं, जाते हैं,
जो धन के लोभी हैं, हमको आँखें दिखलाते हैं।"[53]

कठपुतली का प्रयोग उनकी नाट्यभाषा को समृद्ध बनाया है।

4.1.27 शब्दों से जादूगरी

मणि मधुकर ने अपने नाटक में शब्दों को लेकर ऐसा जादू किया है कि उनका हरेक शब्द नाटक की मूल संवेदना को सार्थक बनाते हैं। उन्होंने नाटक में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, इसमें प्रतीकात्मकता की झलक अधिक है। 'रसगंधर्व' नाटक की शुरूआत 'खून' शब्द के साथ हुई है। यह 'खून' शब्द नाटक में पूरा प्रभाव डालता है। इस 'खून' शब्द के साथ कई तरह के विशेषण सब्दों का प्रयोग करके प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करता है। यहाँ खून शब्द के ज़रिए जन मानस को जागरूक करता है। इसीतरह पात्रों के संबोधन के समय समान ध्वनिवाले अन्य शब्दों का प्रयोग करके व्यंग्य के साथ उस पात्र की जीवन स्थिति को उभारा गया है।

"ब : तुम्हें यह सब कैसे मालूम है?

स : स्साला, ढब्बूजी कहीं का।

ब : (गुस्सा होकर) कौन है ढब्बूजी?

स : तुम्हारा बाप।

ब : मेरे बाप का नाम बदलने का तुम्हें हक नहीं।

स : चुप, बे।

ब : (रूआँसा होकर) मेरे बाप का नाम ढब्बूजी नहीं था, बताये देता हूँ।

द : तो लब्बूजी होगा।

ब : अहूँ, गलत।

अ : तो झब्बूजी होगा।

ब : नहीं।

द : तो ज़रूर दब्बूजी होगा।"[54]

यहाँ दब्बूजी आम आदमी का प्रतीक है। इसीतरह 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में आतंकवाद के प्रति भय एवं नफरत दिखाने के लिए संवाद में 'दर्दनाक' शब्द का प्रयोग करके इससे मेल खाने के लिए 'अफसोसनाक', 'शर्मनाक' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह इस प्रसंग को अधिक प्रभावपूर्ण बना दिया है। ऐसे तुकबंदी शब्दों के प्रयोग से उन्होंने नाटक में पूरा प्रभाव पैदा किया है। इसीतरह 'दुलारीबाई' नाटक में शब्दों को लेकर किए गए खेल पूरे नाटक में एक अनोखा लय पैदा करता है। इस नाटक का पात्र 'कल्लू भांड' द्वारा किए गए संवादों में शब्दों के साथ खिलवाड़ करके पूरे वातावरण का सृजन करता है।

"कल्लू : आहो, आहो, जय जगत्तम् कलकलकत्तम जलथल-
हत्तम् भूतलबत्तम् तनमनमत्तम् लतगतसत्तम
धरफरफत्तम् छलबलसत्तम्... जै-जै-जै-जै,..."[55]

इससे उस पात्र के चरित्र की विशेषताएँ हमारे सामने आतीं हैं। यहाँ कल्लू भांड की चतुराई की अभिव्यक्ति होती है। ऐसा संवाद नाटक के कथानक को सार्थक ढंग से आगे बढ़ाता है। इसीतरह उन्होंने शब्दों से खिलवाड़ करके अपने संवाद को आकर्षक बना दिया है। यह भाषाई अभिव्यक्ति का सशक्त उदाहरण है। संवाद को ताललय के साथ प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने ऐसे शब्दों को चुन लिया, जो नाटक की भाषाई क्षमता को पूरा करने के लिए सक्षम है।

4.1.28 बोलचाल की भाषा और इसका सर्जनात्मक रूप

मणि मधुकर के नाटक की विशेषता उनकी नाट्यभाषा ही है। उन्होंने जन सामान्य को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग किया है। इसलिए उन्होंने अपने नाटक के लिए जन सामान्य के बीच बोलनेवाली बोलचाल की भाषा को चुन लिया। उन्होंने अपने रोज़मर्रे की ज़िंदगी में प्रयोग करनेवाली भाषा को इस्तेमाल करके नाटक को जन जीवन से जोड़ दिया। पात्रों को संबोधित करते समय भी उन्होंने यही दृष्टिकोण अपनाया। साधारण बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त संबोधन शब्दों का भी प्रयोग करके उन्होंने संदर्भ एवं स्थिति को सार्थक बना दिया। 'रसगंधर्व' नाटक का पात्र 'अ' को तुच्छ दिखाने के लिए तिरस्कार पूर्ण संबोधन शब्द 'अबे' शब्द का प्रयोग किया गया है।

"अ : मेहमान तो नहीं, पर तुम-जैसे अधम जीवों के बीच एक पवित्र, ऊँचा इंसान हूँ।

ब : अबे फरिश्ते खाँ। हमें मालूम है, तुम वहीं से खाकर आये हो।"[56]

4.1.28.1 जनभाषा का सृजनात्मक रूप

मणि मधुकर ने जनभाषा का सर्जनात्मक प्रयोग करके हिंदी नाट्यभाषा को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने असंबन्द शब्दों, मुहावरे या लोकोक्तियों को जोड़-तोड़ करके भाषा में नया अर्थ प्रदान किया है।

"ब : वो कहावत है न, नंगी क्या तो धोयेगी और क्या निचोडेगी।

अ : नंगी दुर्भाग्य को धोयेगी, नारों को निचोडेगी। (चारों मिलकर यह कथन दोहराते हैं।)"[57]

उन्होंने 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में "आमूल-चूल-निर्मूल"[58] शब्द का प्रयोग करके नाटककार के फाँसी के प्रसंग को सार्थक बना दिया है। ये शब्द द्वारा सूचित करनेवाले अर्थ यह है कि नाटककार को फाँसी की सज़ा दी जानी चाहिए। यहाँ आमूल-चूल शब्द के साथ उससे मेल खानेवाले और एक शब्द निर्मूल का प्रयोग पूरी सार्थकता के साथ संवाद को आगे बढ़ाता है। इसी संदर्भ में 'काके' द्वारा किए गए "शासन-

अनुशासन-प्रशासन"[59] शब्द से 'नाटककार' एवं उनके नाटक के प्रति इशारा किया गया है।

उन्होंने संदर्भ एवं स्थिति को ध्यान में रखकर शब्द, वाक्य एवं मुहावरे का प्रयोग इस प्रकार किया है कि इन्हें एकदम तोड़ फोड़कर उसके अर्थ तल में बिना किसी बदलाव के साथ प्रयोग करके नाटक में पूरा प्रभाव पैदा करता है। उन्होंने 'रसगंधर्व' नाटक में 'कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली' नामक कहावत को संदर्भोचित अर्थ प्रदान करने के लिए तोड़-फोड़कर प्रयोग किया है। इस नाटक की शुरूआत युद्ध के आह्वान से होती है। यहाँ नाटककार आम जनता से अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा देते हैं।

"अ : (यकायक चिल्लाकर)
जागो राजा भोज
जागो गंगू तेली"[60]

'भानुमती का कुनबा' नामक मुहावरे का प्रयोग भी इसीतरह तोड़-फोड़ करके किया गया है। इसमें उन्होंने नाटक के कथ्य की गहनता एवं संवेदना को उभारा। फिल्मी गीतों का भी संवाद रूप में प्रयोग करके उन्होंने नाट्यभाषा को एक नया आयाम दिया गया। उन्होंने 'बुलबुल

सराय' नाटक में 'झुमका गिरा रे...' गीत के प्रयोग द्वारा अधिकारियों की लापरवाही, अज्ञता एवं अधिकारों के दुरूपयोग की ओर इशारा किया है।

संवाद में ऐसे नए-नए प्रयोग करके उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को आकर्षक बना दिया है। उनका यह प्रयोग अर्थ की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। संवाद को रोचक बनाने के लिए यह सहायक हुआ है।

4.1.29 शब्दों पर बलाघात

जन साधारण की भाषा की विशेषता दिखाने के लिए उनकी भाषा में होनेवाले बलाघात को उसी तरह प्रस्तुत किया गया है। बोलचाल की भाषा में कभी-कभी कुछ शब्दों पर बलाघात होता है। मणि मधुकर ने अपने नाटकों में बोलचाल की भाषा की इन सभी विशेषताओं को दिखाया है। उनके नाटक के पात्र निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के कारण उनकी भाषा भी बोलचाल की भाषा है। इसलिए उनकी भाषा सामान्य जन की जीवन स्थितियों को उभारने के लिए सक्षम है। शब्दों में बलाघात की यह प्रवृत्ति उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है।

"चोचों : जो बोलें,परधान मंतरी-
गोंगों : *ff*लेखक वोही लिक्खे।
चोचों : जैसा जो टी.वी दिखलाये-
गोगों : *fff* वैसा सबको दिक्खे-"[61]

उन्होंने कभी-कभी विरोध और क्रोध के भाव को प्रकट करने के लिए तथा पात्रों के मन के संघर्षों को दिखाने के लिए शब्दों पर बलाघात का प्रयोग किया है। 'रसगंधर्व' नाटक के 'अ' का कथन इसका उदाहरण है-

"अ : .... (सख्ती से) और तुम्म लोग। तुम्हारा कितना पतन हो चुका है। इतनी देर से सब्बड़-सब्बड़ खाये चले जा रहे हो। लेकिन-जो व्यक्ति तुम्हारे लिए यह सब लेकर आया, उससे तुमने पूछा तक नहीं।"[62]

इसीतरह भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ किसी बात पर व्यंग्य उठाने के लिए भी उन्होंने बलाघात का प्रयोग किया है। 'दुलारीबाई' नाटक में उनके जूते पर व्यंग्य उठाने के लिए 'बड्डे मशहूर जूते' कह दिया है। इससे दुलारी के जूते की सारी विशेषताएँ उभर कर सामने आतीं हैं।

इसीतरह उनके नाटक में फिल्लम देखने, इल्लम खोजने, चिल्लम फूँकने, खोल्ले, गज्जब, खुस्स, दिम्माक, नज्जारा, सफ्फा, हज्जारों, अक्कल, शक्कल, सच्ची-मुच्ची आदि बलाघात वाले शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह उनकी नाट्यभाषा को प्रभावशाली बनाता है।

4.1.30 ध्वनि सादृश्य

ध्वनि की सादृश्यमयता उनकी नाट्यभाषा की अलग विशेषता है। ध्वनि सादृश्य उनकी नाट्यभाषा में एक विशेष तरह का लय पैदा करता है। उस लय उनकी भाषा को जनसाधारण की बोलचाल की भाषा के साथ जोड़ता है। भाव की अभिव्यक्ति के लिए भी ध्वनि-सादृश्य का उपयोग किया जाता है। मणि मधुकर ने अपने नाटक में क्रोध का भाव दिखाने के लिए संवाद में ध्वनि-सादृश्य का प्रयोग किया है।

"स : गटर में गया गँठबन्धन। इस पर सबसे ज़्यादा मेरा हक़ है।

ब : हक़-वक़ का सुगालता छोड़ो। स्त्री जिस घर में रहती है उसी की संपत्ति कहलाती है। यह मनुस्मृति में कहा गया है।"[63]

कभी-कभी अज्ञता को दर्शाने के लिए उन्होंने ध्वनि सादृश्य का प्रयोग किया है। 'बुलबुल सराय' नाटक का पात्र 'ख' का एक कथन इसका उदाहरण है। उनका "सप्पमराट! कोई महात्मा-वहात्मा हैं?"[64] ऐसा प्रश्न सामान्य जन जीवन की अज्ञता की ओर इशारा करता है। यथार्थ से अधिक निकट लाने के लिए और संवाद को आकर्षक बनाने केलिए ध्वनि-सादृश्य का प्रयोग सहायक हुआ है। ध्वनि-सादृश्य में ऐसी एक शक्ति छिपी हुई है कि यह असामान्य को सामान्य बना देती है।

मणि मधुकर ने अपने नाटकों में 'पाँव-वाँव', 'हक-वक', 'भ्रम-व्रम', 'खलिहान-फलिहान', 'पांडे और भांडे', 'टपकू-वपकू', 'सिलाई-विलाई', 'सोचने-फोचने' आदि सादृश्यमय ध्वनि का प्रयोग किया है। नाट्यभाषा में ध्वनि सादृश्य का अपना महत्व है। यह एक ओर भाषा को बोलचाल के निकट लाता है तो दूसरी ओर भावाभिव्यक्ति का माध्यम बन जाता है। मणि मधुकर ने अपनी नाट्यभाषा में ध्वनि सादृश्य का सार्थक प्रयोग किया है।

4.1.31 अश्लील संवाद

मणि मधुकर के संवाद में अश्लीलता की छाप देख सकती है। आलोचकों ने मणि मधुकर के साहित्य पर अश्लीलता का आरोप लगाया है। लेकिन उनके इस प्रयोग के पीछे यथार्थ के प्रति उनका आग्रह है। नाटक में भी इसी तरह के संवाद देख सकते हैं। इसतरह के संवाद का प्रयोग जीवन यथार्थ के नंगे प्रस्तुतीकरण का उदाहरण है। उन्होंने नंगेपन को बिना किसी दुराव-छिपाव के साथ प्रस्तुत करना चाहा। आम जनता अपने दैनिक जीवन में विभिन्न परिस्थितियों से किस तरह प्रतिक्रिया करते हैं, उसी को उसी रूप में उन्होंने अपने नाटक में लागू करने की कोशिश की। इसलिए उन्होंने बिना किसी दुराव-छिपाव के साथ अश्लील शब्द एवं वाक्य को नाटक में लागू किया।

'रसगंधर्व' नाटक में अश्लील संवादों का प्रयोग हुआ है।

"स : पेटीकोट खोलकर कहाँ रखती थी?

द : बाँस पर टाँग देती होगी।

स : नटिनी थी क्या?

द : इसको अपने खरबूजों पर बिठला कर नचाती होगी।"[65]

यहाँ सामान्य जन जीवन के बीच की ऊलजलूल बातों का संकेत मिलता है। उन्होंने कभी-कभी क्रोध की अभिव्यक्ति के लिए और कभी व्यंग्यात्मक वातावरण बनाने के लिए ऐसी गाली-गलीज भाषा का प्रयोग किया है। ऐसे अनेक शब्द एवं वाक्य उनके नाटक में मिलते हैं- 'भड़वा', 'चुगद', 'औलाद', 'हगना', 'स्साला', 'सुअर की औलाद', 'घटा', 'मूतना', 'पादना' आदि। इसी तरह उन्होंने द्वयार्थ वाले शब्द एवं वाक्य का प्रयोग भी किया है। जैसेः "सोने से पहले हेमा मालिनी को याद किया"[66], "मेरी परखनली भर चुकी है"[67], "आज की रात तुम मुझे क्या इनाम दे रही हो"[68] आदि।

अपनी नाट्यभाषा को सामान्य जन की भाषा से जोड़ने की प्रवृत्ति मणि मधुकर में ज़्यादात्तर देख सकती है।

4.1.32 निरर्थकता में सार्थकता

मणि मधुकर ने अपनी संवाद योजना में बड़ी कुशलता दिखाई है। उनकी भाषाई कौशल का सशक्त उदाहरण उनके संवाद ही है। उन्होंने अपने नाटक में निरर्थक शब्दों को भी सार्थक बना दिया है। निरर्थकता में सार्थकता लाने की प्रवृत्ति उनके नाटक की भाषिक क्षमता बढ़ाती है। 'रसगंधर्व' नाटक में इसका एक उदाहरण है।

"अ : ज़ोर तेरा-

तीनों : होश्या *ff*

अ : भाई मेरा-

तीनों : होश्या *ff*

अ : उड़न कबूतर-

तीनों : होश्या *ff*

अ : भूरी बिल्ली-

तीनों : होश्या *ff*

अ : पहुँची दिल्ली-

तीनों : होश्या *ff*"[69]

यहाँ 'होश्या *ff*' शब्द निरर्थक है। लेकिन संदर्भ इसे सार्थक बनाता है। इसीतरह उन्होंने संवादों के बीच ऐसे संवाद का निर्माण किया है, जो अक्षरों को बिना किसी योग के साथ प्रयोग करता है।

"सन्तरी : ग-प-ज-ह-त-ल-रोटी
म-च-ख-र-क-ट-दाल
जान की बवाल!
प-झ-द-थ-न-ड-वर्दी
ढ-छ-ड-भ-त-श-ढाल
वस्तर और भोपाल!"[70]

उनकी यह अस्पष्ट और अव्यक्त संवाद भाषा को एक तरह विकृत बना देता है। इससे लेखक विकृत राजनीतिक व्यवस्था की ओर इशारा करते हैं। इस संवाद की प्रतिक्रिया के रूप में 'अ, ब, स, द' द्वारा 'वाहेगुरू' मंत्र के रूप में "वाहे चरखा, वाहे चेला, वाहे खादी"[71] करके दिखाया है। इसप्रकार उन्होंने निरर्थक शब्द को सार्थक बनाकर अपनी नाट्यभाषा को प्रभावशाली बना दिया है।

4.1.33 अप्रयुक्त शब्दों का प्रयोग

उन्होंने अपने नाटक में सामान्य जीवन से जुड़ी हुई बातों को अपनाया। उन्होंने अपनी नाट्यभाषा में अधिकतर प्रयोग में न आनेवाले

शब्दों का भी प्रयोग करके उनकी भाषा में ताज़गी लाने का प्रयास किया। अंधविश्वास की ओर इशारा करने के लिए छींकने की आवाज़ को भी भाषाई माध्यम बना दिया। शुभ अवसर पर छींकना अशुभ है, यह साधारण जन जीवन के बीच प्रचलित अंधविश्वास है। लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से इसीतरह के अंधविश्वास पर चोट लगायी है।

'दुलारीबाई' नाटक को पात्र कल्लू भांड के चरित्र की विशेषता दिखाने के लिए उनके संवाद में 'आहा हा' जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह शब्द संदर्भ एवं स्थिति को सार्थक बनाता है।

4.1.34 अतीत को वर्तमान बननेवाली भाषा

असलीयत की तलाश में निकले मणि मधुकर जी ने अपनी नाट्य रचना के लिए लोकनाट्य शैली अपनायी। क्योंकि खोखलेपन हावी होनेवाली इस दुनिया में असलीयत की झलक लोक साहित्य में मिलती है। इसलिए ही उन्होंने नाट्य रचना के लिए लोकनाट्य शैली को अपनाया। उनकी राय में नाटक को यदि लोक से जुड़ा रहना है तो उसे लोक परंपरा से भी जुड़ना ही होगा। उनकी नाट्य रूढ़ियाँ एवं पद्धतियाँ राजस्थानी लोकनाट्य परंपरा की हैं। उन्होंने संस्कृत नाट्यशैलियों से अलग होकर नाट्य रचना की। लोकनाट्य शैली की प्रासंगिकता को ध्यान में रखकर उन्होंने इस शैली को अपनाया।

वे राजस्थान के कुचामणी ख्याल से प्रेरणा पाकर इसी तरह की शैली को हिंदी में लाना चाहा। इसके साथ-साथ उन्होंने रासधारियों के संगीत, माच, नाचा आदि का भी प्रयोग किया। इसमें वे सफल हुए। उगमराज के कुचामणी ख्याल में कई विसंगतिवादी तत्व उपस्थित हैं। एब्सर्ड नाटक अपनी शैली में मनुष्य की आदिम प्रवृतियों तक पहुँचने के प्रति सचेत है। लोक नाटकों के मूल में आदिम संस्कारों की छाप है। इसलिए हम कह सकते हैं कि एब्सर्ड नाटक के लिए लोकनाट्य परंपरा ने नींव डाली। मणि मधुकर ने अपने नाटकों में लोक कथाओं के माध्यम से आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उजागर किया। लोक कथाओं से लेकर मिथक की ओर ले बढ़ने की प्रक्रिया उनके नाटक की विशेषता है।

उन्होंने अतीत की कथावस्तु को वर्तमान के साथ सार्थक रूप से जोड़कर वर्तमान को और अधिक प्रभावी बना दिया है। वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों को पूरी तरह से उभारने के लिए उनकी यह पद्धति सफल हुई। लोकनाट्य शैली एवं एब्सर्ड के योग से उनके नाटकों ने हिंदी नाट्यक्षेत्र में एक अलग पहचान बनाया।

पुरानी और नई रंगभाषा का समन्वय करके उन्होंने कथानक की गहराई एवं संवेदना को उजागर किया। 'रसगंधर्व' नाटक के उत्तरार्द्ध में

आकाश में पुष्पवर्षा का प्रयोग करके दृश्य बदलता है। नाटक में कैदियों की जीवन स्थिति में बदलाव लाने के लिए हवा में लहराते हुए रंग-बिरंगे वस्त्र गिरते हैं और वे उन वस्त्र पहनकर कैदियों वाली वर्दी उतारकर फेंक देते हैं। पुष्पवर्षा का प्रयोग पौराणिक नाटकों में देख सकता है। उन्होंने पुष्पवर्षा का प्रयोग नए ढंग से करके इसको नया अर्थ दिया है।

4.1.35 मणि मधुकर की नाट्यभाषा में शब्द प्रयोग

मणि मधुकर ने अपनी नाट्यभाषा को तत्सम, अर्ध तत्सम, देशज एवं विदेशी शब्दों के कुशल प्रयोग से समृद्ध बनाया है।

4.1.35.1 अर्ध तत्सम शब्द

भाषा शास्त्रियों ने अर्धतत्सम को तद्भव की संज्ञा दिया है। नाट्यभाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग कथ्य एवं चरित्र की सक्रिय प्रस्तुति के लिए किया जाता है। मणि मधुकर के नाटक इसका सशक्त उदाहरण है। उन्होंने तद्भव शब्दों के रोचक एवं सार्थक प्रयोग उनकी संवाद योजना में किया है। भाषा के सरल रूप को प्रधानता देनेवाले नाटककार मणि मधुकर ने तद्भव शब्द का प्रयोग करके नाटक को सामान्य जन जीवन से अधिक जुड़ाकर उसको संप्रेषणीयता प्रदान की है। सामान्य जन को समझनेवाली और सामान्य जन के दैनिक जीवन में प्रयोग में

आनेवाले शब्दों का प्रयोग उनके नाटक को अलग बनाता है। उन्होंने अपने नाटक में 'शिरीमान', 'किरसन', 'परन', 'परबत', 'गिरस्थी', 'परसन्न', 'किरपा', 'बिन्दराबन', 'बरस्ट', 'परधान मंतरी', 'चन्दरमुखी' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

जन प्रचलित तद्भव शब्दों का प्रयोग मणि मधुकर ने अपनी नाट्यभाषा में समाविष्ट किया है। ये शब्द उनकी नाट्यभाषा को संप्रेषणीय एवं प्रभावशाली बनाते हैं।

4.1.35.2 देशज शब्दों का प्रयोग

लोकभाषा को भाषा का आदिम रूप कहा जा सकता है क्योंकि इसका संबन्ध मनुष्य की उत्पत्ति से है। शहरों और गाँवों के अशिक्षित आम लोग अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए सरल शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। इस रूप को रचनात्मक दृष्टि में देशज कहा जाता है। हिंदी में अनेक शब्द ऐसे भी हैं, जो भारत की अनेक भाषाओं से आए हैं।

मणि मधुकर ने अपने नाटक में देशज शब्दों का प्रयोग करके उनकी नाट्यभाषा को जनसाधारण के साथ जुड़ा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जन सामान्य की भाषा के साथ नाटककार का संबन्ध बहुत

दृढ़ है। उन्होंने स्वाभाविक ढंग से देशज शब्द का प्रयोग करके अपनी नाट्यभाषा को आकर्षक बनाया है। उन्होंने- 'गप्पड़चौथ', 'सप्पमराट', 'लंडूरा', 'ललुए', 'गबदू', 'गोगली गाय', 'गाँठजोडा', 'थोबड़ा', 'घोंचू', 'छोरा', 'छोरी', 'बीरबानी', 'जब्बर', 'जुगाड़', 'घटाटोप' आदि अनेक देशज शब्दों का इस्तेमाल किया है।

4.1.35.3 विदेशी शब्दों का प्रयोग

सैकडों वर्षों से विदेशीय शासन में रहने के कारण हिंदी पर विदेशी भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव दो प्रकार के हैं- मुसलमानी एवं यूरोपीय। इसमें मुसलमानी प्रभाव के कारण हिंदी में अनेक अरबी, फारसी एवं तुर्की भाषा के शब्द आए हैं। यूरोपीय प्रभाव के कारण अंग्रेज़ी के अनेक शब्द भी हिंदी में आए हैं।

मणि मधुकर ने अपनी नाट्यभाषा में विदेशी शब्दों का ऐसा प्रयोग किया है, जो शिक्षित एवं अशिक्षित लोग समझ सके। इसका सहज स्वाभाविक उपयोग उनकी नाट्यभाषा की उपलब्धि है। उन्होंने अपने जीवन व्यापार में दैनंदिन प्रयोग में आनेवाले अरबी, उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग करके उनकी नाट्यभाषा को समृद्ध बना दिया है।

4.1.35.3.1 अरबी शब्द

हक़ीक़त, फिक्र, ज़ायका, ओहदा, कायदा, हाजमा, हाकिम, स्वायत, रौनक, तक़दीर, तोहमत, मसलन, हुलिया, अलबत्ता, औलाद, तक़रार, इजाज़त, हिफाजत, ख़ताब, वाकई, रिआया।

4.1.35.3.2 उर्दु, फारसी शब्द

तहख़ाना, ग्लाज़त, मोज़े, लंगर, दास्तान,फरिश्ते खाँ, मगज़, लुत्फ़, इत्र-फरोश, ख्वाब, देगची।

4.1.35.3.3 अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग

मणि मधुकर की प्रयोगशील दृष्टि उनकी नाट्यभाषा में अधिक मुखरित है। यथार्थवाद के प्रति उनकी आग्रहशीलता उनकी नाट्यभाषा में दृष्टव्य है। उनके नाटक कथावस्तु के प्रति जितना यथार्थवादी है उतना भाषा की दृष्टि में भी है। उन्होंने अपने नाटक में अंग्रेज़ी का भी प्रयोग किया है। उनके नाटक में अंग्रेज़ी के छोटे-छोटे शब्दों से लेकर पूरे संवाद में भी अंग्रेज़ी का प्रयोग देखा जा सकता है। उन्होंने अपने बोलो बोधिवृक्ष नाटक में अंग्रेज़ी का बहुत अधिक प्रयोग किया है।

"छीछी: हम एनीमल फार्म में रहने के आदि हो गए हैं।

लाले : यू आर माइ पूसी कैट!

छीछी : यु आर माइ अलशेसियन डॉग!

नीनी : मैं तुम्हारी मोनालिसा हूँ, काके!

काके : आइ विल सेल योर स्माइल... इन दि ओपन मार्केट... एंटीक्स का बिजनेस करनेवाले अच्छे दाम देकर खरीद लेंगे।"[72]

उन्होंने अपने नाटक 'दुलारीबाई' में ब्रह्म-विष्णु महेश द्वारा अंग्रेज़ी का प्रयोग करके समकालीन राजनीतिक विसंगतियों को उभारा है। इसके द्वारा उन्होंने आज की राजनीतिक अव्यवस्था एवं अवसरवादिता पर घोर व्यंग्य किया है। सत्ताधारी लोग अपनी शक्ति द्वारा प्रजा को दबाकर रहते हैं। इसका प्रतीकात्मक चित्रण यहाँ लेखक ने प्रस्तुत किया है।

"ब्रह्मा : नो, नो, नो। आई हैव नो टाइस। गेट आउट।"[73]

इसीतरह अंग्रेज़ी के शब्दों और वाक्यों का प्रयोग उनकी नाट्यभाषा को आकर्षक बनाता है।

4.1.36 मणि मधुकर की नाट्यभाषा में हिंदीतर भाषा का प्रयोग

मणि मधुकर को भाषा पर असामान्य अधिकार है। इसी कारण उन्होंने अपने नाटकों में हिंदीतर भाषाओं का प्रयोग अधिकतर रूप में किया है। बहुभाषा पर उनका अधिकार उनके नाटकों में देख सकते हैं।

"आमि बंगाली, म्हारो देस मारवाड़
म्हानै भोत चोखी लागै रे भाई, मारधाड़
शूं छे शूं छे गुजराती, चुप बे चपरकनाती
असि रखांगे डिमांड अर भंगड़ा करांगे
ढोलणा... मैनु नईं बोलणा!"[74]

बहुभाषा का ज्ञान उनकी सबसे बड़ी विशेषता है और यही विशेषता उनकी नाट्यभाषा की सफलता है।

4.1.36.1 ठेठ राजस्थानी भाषा का प्रयोग

मणि मधुकर की भाषागत विशिष्टताओं पर ध्यान रखने से यह मालूम होता है कि उनके नाटक के कथ्य का मूल स्रोत राजस्थानी जीवन है। इसलिए उनके नाटक में राजस्थानी भाषा का भी प्रभाव है। उन्होंने 'दुलारीबाई' नाटक में ठेठ राजस्थानी भाषा का प्रयोग किया है।

इस नाटक का पात्र गंगाराम जाट द्वारा ठेठ राजस्थानी भाषा का प्रयोग किया गया है।

"गंगाराम : तम्म गाँव के मालक हो... अपण फर्ज निभाणा पडैगा तम्म नै। फैर म्हारै बाप-दादों के ब्याह भी थारे बाप-दादों ने करवाए थे- म्हैं तो अपणै मात्ता-पित्ता का अक्केला लड़का हूँ। जे म्हारी शादी का बन्दोबस्त नहीं हुआ तो बंश का नाम ही मिट जाएगा।"[75]

इससे मालूम होता है कि मणि मधुकर ने अपनी नाट्यभाषा में भाषाई वैविध्य का संयोजन किया है। इसीप्रकार राजस्थानी शब्दों का कुशल प्रयोग उनकी नाट्यभाषा को प्रभावपूर्ण बनाता है। जैसे : 'छतर छपो', 'चक्कर घिन्ना', 'सुम्मड़ सिन्ना', 'आच्छया', 'आहो', 'नाहो', 'अफण्ड', 'दम्मक-दल्लो', 'अड़दुम', 'तड़छुन', 'सप्पमपाट' आदि।

4.1.37 मणि मधुकर की नाट्यभाषा में मुहावरे और लोकोक्तियाँ

नाट्यभाषा को यथार्थ के आसपास लाने के लिए मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। लोकोक्ति एवं मुहावरे में युग-युगान्तर का अनुभव शामिल होता है। इसका प्रयोग भाषा को शक्ति प्रदान करती है। लोकोक्ति एवं मुहावरे अर्थ का भण्डार हैं। ये आकार में छोटे होते हैं। लेकिन इसकी अर्थ सीमा विशाल है। इसलिए साहित्य

में इसका प्रयोग साहित्य की मूल चेतना को जागृत करने के लिए होता है। ये हमें हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परंपराओं के साथ जोड़ते हैं। ये लोकजीवन से अधिक जुडे होते हैं। लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा में सौंदर्य बढ़ाती है और भाषा में अर्थ की तीव्रता बढ़ाती है।

भावाभिव्यक्ति के लए मुहावरों का प्रयोग बहुत सहायक होता है। मणि मधुकर ने भावाभिव्यक्ति के लिए और हास्यास्पद वातावरण की सृष्टि के लिए मुहावरे का सहारा लिया है। यह उनकी नाट्यभाषा को जीवंत और अभिव्यंजक बनाता है।

4.1.37.1 मुहावरे और लोकोक्तियाँ

- उल्टा चोर कोतवाल को डांटे
- मुँह काला करना
- अडियल टट्टू है
- घर में नहीं दाने, मिंया चले भुनाने।
- मुँह मीठा करना
- रंगे हाथों पकटना
- दिल छोट करना
- उल्टे बाँस बरेली को

- जोखम में डालना
- न घर के न घाट के
- ईंट का जवाब पत्थर छाप

4.1.38 संस्कृत की मंत्रोच्चारण रीति

मणि मधुकर ने 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुतायत रूप से किया है। व्यंग्यात्मक वातावरण की सृष्टि के लिए उन्होंने हिंदी शब्दों के साथ-साथ संस्कृत शब्दों का प्रयोग करके मंत्रोच्चारण की रीति को अपनाया। नाटक की मूल संवेदना को उभारने में यह बहुत सहायक हुई। उन्होंने समसामयिक समस्याओं को इसी ढंग से प्रस्तुत किया।

> "ओं रामभूमि शिलाय नमौ नमः
> ओं बाबरी मस्जिदाय नमौ नमः
> ओं महँगाई कष्टाय नमौ नमः
> ओं लॉ. एंड आर्डर नष्टाय नमौ नमः"[76]

4.1.39 मंचीय भाषा

नाट्यभाषा सिर्फ लिखित भाषा नहीं है। लिखित भाषा के साथ मंचीय भाषा जोड़ने से नाट्यभाषा अपना सार्थक रूप धारण करती है।

रंगमंच की अपनी अलग भाषा होती है। इसमें सभी मंचीय तत्वों का समावेश होता है। मंचीय भाषा के अंतर्गत प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि संयोजन, गीत-संगीत, वेशभूषा, दृश्यविधान, रूप सज्जा आदि कई तत्व आते हैं। मंचीय भाषा संप्रेषण का सशक्त माध्यम है। मणि मधुकर ने अपने नाटकों में ऐसे कई मंचीय तत्वों को भाषाई रूप दिया है। यह उनके कथ्य को प्रभावशाली बनाती है। कथ्य को सार्थक ढंग से आगे बढ़ाने में यह सहायक हुआ। उन्होंने मंचीय भाषा को भी अपने नाटकों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

4.1.39.1 प्रकाश व्यवस्था

कोई भी नाटक तब तक नाटक नहीं होता जब तक उसे मंच पर पदर्शित न किया जाए। मंच को भी दर्शकों से कहने के लिए बहुत हैं। यह हमसे मौन रूप से बातें करती है। मंच की भी अपनी भाषा होती है। प्रकाश व्यवस्था असल में मंच की तकनीकी पक्ष है। लेकिन नाटक में प्रकाश योजना सिर्फ मंच पर रोशनी प्रदान करने की नहीं, नाटक को और अधिक उज्ज्वल बनाने की है। अभिनय के साथ जुड़कर प्रकाश भी नाटक में संप्रेषण का काम करता है। एक तकनीकी व्यवस्था किस प्रकार एक कथा की आत्मा और उसकी संवेदनात्मक अनुभूति बन जाती है। इसका उत्तम उदाहरण है नाटक में प्रकाश व्यवस्था।

नाटक में एक दृश्य के अंत और स्थानीय परिवर्तनों को दिखाने के लिए, किसी व्यक्ति या किसी विशेष संदर्भ को विशेष महत्व देने के लिए और वास्तविक दृश्य को फंतासी या सपने में बदलने के लिए और समय का बोध कराने के लिए नाटक में प्रकाश व्यवस्था का प्रयोग किया जाता है। मणि मधुकर ने अपने नाटकों में बड़ी कुशलता से इसका प्रयोग किया है। उन्होंने प्रकाश योजना द्वारा नाटक की आत्मा को प्रस्तुत कर दिया है। उन्होंने वातावरण की सृष्टि के लिए प्रकाश का उपयोग किया है। मणि मधुकर ने 'रसगंधर्व' नाटक के आरंभ में प्रकाश व्यवस्था के माध्यम से वातावरण का बोध दिया है। उन्होंने दो भागों में बांटे हुए मंच पर प्रकाश के माध्यम से जेल के वातावरण का निर्माण किया। इसीतरह काल या समय का बोध कराने के लिए प्रकाश व्यवस्था को इस्तेमाल किया गया है।

"सब कुछ मन्द अंधेरे में डूब जाता है। कहाँ कोई मुर्गा बाँग देता है। कुछ देर बाद, जैल का घड़ियाल घनघनाता है। धीरे-धीरे अंधेरा छँटने लगता है। सुबह की रोशनी फूटती है।"[77]

प्रकाश की चमक बढ़ाने से किसी दृश्य की भावात्मक तीव्रता भी बढ़ती है। 'रसगंधर्व' नाटक के उत्तरार्द्ध में लेखक और युवती के बातचीत के बाद अगला दृश्य जेल और अ, ब, स, द नामक कैदियों का है।

इसकेलिए सबसे पहले जेल की ऊँची, भद्दी दीवार पर प्रकाश चमकती है, इसके बाद कोने में रखे हुए तसले, बाल्टी, लोटे, स्टूल आदि सामान को टटोलती हुई रोशनी इन चार कैदियों के चेहरों पर झुक जाती है। इसीतरह उस संदर्भ एवं स्थिति को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है।

उन्होंने प्रकाश व्यवस्था को असफल दृश्यों को सफल बनाने का माध्यम माना है। दृश्य बदलने के लिए उन्होंने प्रकाश एवं संगीत के मिले-जुले प्रयोग करके नाटक के पूरे भाव को उभारा है। 'अंधी आँखा का आकाश' नाटक में तीन अलग संदर्भों में समान दृश्य दिखाने के लिए उन्होंने रंगीले प्रकाश का प्रयोग किया है। इस नाटक की नायिका उमा के जीवन संघर्ष को यहाँ व्यक्त किया गया है। उमा पहले युवक एक के साथ खडे होते समय नीला प्रकाश, दूसरे युवक के साथ के समय लाल प्रकाश और तीसरे के साथ हरे प्रकाश का प्रयोग किया गया है।

'इकतारे की आँख' नाटक में उन्होंने प्रकाश योजना द्वारा कबीर के चेहरे पर बुढ़ापे की छाप एवं रोग अवस्था को दर्शाया है। दृश्य बदलने के लिए प्रकाश का प्रयोग सफल ढंग से किया है। 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में छः पात्र हैं - चोंचों और गोंगों, काके और लाले, नीनी और छीछी। इन छहों पात्रों में पहले चोंचों-और गोगों का प्रसंग है, उस समय

मंच पर उन दोनों पर प्रकाश वृत्त बनाकर उनकी भूमिका सफल बनाई है।

> "(दो अलग-अलग प्रकाशवृत्त आकार लेते हैं। उनमें काके और लाले, नीनी और छीछी, आपस में गुस्सा प्रकट करते हुए) ... (काके और लाले प्रकाशवृत्त में शेष सब अंधकार में।)"[78]

उन्होंने संवाद के अनुकूल प्रकाश का प्रयोग करके संवाद के हरेक शब्द को या संवाद के सारांश को अधिक प्रभावी बना दिया। 'दुलारी बाई' नाटक में रात का बोध कराने के लिए लालटेन का प्रयोग किया गया है। इसी तरह उन्होंने प्रकाश व्यवस्था द्वारा समय का बोध किया है।

4.1.39.2 अंधकार का प्रयोग

उन्होंने प्रकाश की तरह अंधकार का भी कुशल प्रयोग करके उनके नाटकों को प्रभावशाली बना दिया है। 'इकतारे की आँख' नाटक में उन्होंने अंधकार को एक पात्र के रूप में चित्रित किया है। अंधकार से कबीर का संवाद द्वारा नाटक की मूल संवेदना को उजागर किया गया है। इस नाटक में अंधकार का प्रतीकात्मक रूप कबीर के जीवन संघर्ष को

व्यक्त करने के लिए सहायक हुई। इसीतरह उन्होंने 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक के उत्तरार्द्ध में पात्रों के रोने के अवसर पर अंधकार का प्रयोग करके प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान किया है।

"नीनी : आओ हम फैला दें पुन! अंधकार-

छीछी : क्योंकि फाँसी पर चढ़ाया जा रहा है हमारा नाटककार!

चारों : चलो, हम टीवी पर देख लें उसे अंतिम बार! (हाथों से अंधकार फैला देते हैं।...)"[79]

यहाँ अंधकार समाज में फैला हुआ अंधकार है। इस अंधकार में रहकर रो-रो कर जीने की व्यर्थता यहाँ दिखायी गयी है। लेखक हमें इससे मुक्ति पाने की प्रेरणा देती है। लाले का कथन इसका उदाहरण है।

"हम नयी रोशनी लाएँगे।"[80]

इसी तरह उन्होंने 'खेला पोलमपुर' नाटक में मौत को 'काली आकृति' के रूप में चित्रित किया है।

"(जडियाँ चली जाती है। समरू निश्चल सोता रहता है। अचानक कुछ अँधेरा हो जाता है। डरावनी आवाज़ें उभरती हैं। एक काली आकृति समरू के सिरहाने आकर खड़ी हो जाती है।)"[81]

इसप्रकार अंधकार का सफल प्रयोग उनकी नाट्यभाषा को अग्रणी बनाता है।

4.1.39.3 पूर्वस्मृति (फ्लैशबैंक)

अतीत की घटनाओं का वर्णन करने के लिए पूर्वस्मृति का उपयोग किया जाता है। यह नाटक के कथ्य को एकीकृत एवं विकसित करता है। अभिनय एवं मंचोपकरण के माध्यम से पूर्वस्मृति मंच पर प्रस्तुत कर सकता है। उन्होंने 'अंधी आँखों का आकाश' नाटक में पूर्वस्मृति का प्रयोग किया है। इस नाटक के पात्र गीता और देवी दयाल के बातचीत के बीच पूर्वस्मृति का प्रयोग किया गया है।

"पृष्ठभूमि में, कुछ दूर, देवी दयाल की आवाज़ सुनाई पड़ती है- भाईयों और बहनों, आज हम सभी अपने देश को आज़ाद देखना चाहते हैं और एक ऐसी लड़ाई में शामिल हैं जो बहुत सी कुर्बानियाँ माँगती है। आप सब जानते हैं कि गुलामी की ज़िंदगी से मौत बेहतर है। हमें अपना तन-मन-धन न्यौछावर करने के लिए तैयार रहना चाहिए। हमें अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ एक ताकत पैदा करनी पडेग़ी।"[82]

4.1.39.4 वेशभूषा

वेशभूषा आहार्य अभिनय के अंतर्गत आती है। नाटक में वेशभूषा का भी अपनी अलग भाषा होती है। वेशभूषा का संबन्ध सीधे अभिनेता से है। अभिनेता वेशभूषा के माध्यम से पात्र के मन, स्वभाव, शरीर आदि के निकट पहूँचता है। वेशभूषा नाटक के अनुरूप होनी चाहिए। नाटक ऐतिहासिक कथा पर आधारित है तो वेशभूषा ऐतिहासिक तरीके का होनी चाहिए।

मणि मधुकर ने अपने नाटकों में वेशभूषा का विस्तृत निर्देश नहीं दिया है। फिर भी कभी-कभी कथ्य के आवश्यकतानुसार उसकी सुगम गति के लिए वेशभूषा का निर्देश दिया गया है। उन्होंने 'रसगंधर्व' नाटक में कथ्य को ध्यान में रखकर वेशभूषा का प्रयोग किया।

> "तभी आकाश से पुष्प-वर्षा। सब जने विस्मय से भर उठते हैं। कुछ क्षण बाद, हवा में लहराते हुए रंगबिरंगे वस्तु गिरते हैं। ....फिर वे कैदियों वाली वर्दी उतारकर फेंक देते हैं और रंगीन वस्त्र पहनते हैं.... "[83]

उन्होंने पात्रों के स्तर एवं चरित्र के अनुकूल वेशभूषा का प्रयोग किया। 'रसगंधर्व' नाटक में सन्तरी की वेशभूषा पर नाटककार इतना

ध्यान दिया है कि, यह लेखक एवं अफसर की वेशभूषा से पूर्ण रूप से भिन्न है। इसप्रकार 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में बोधिवृक्ष को सजाते समय उन्होंने विशेष ध्यान दिया है।

मणि मधुकर ने 'खेला पोलमपुर' में वेशभूषा का प्रयोग विशेष ढंग से किया है। वह स्थिति एवं संदर्भ को सार्थक बनाती है। समरू बीमरी से बचता है यह दिखाने के लिए वेशभूषा का प्रयोग इसी तरह किया है कि- "बीमारी के सलवटों- भरे कपडे उतारकर, वह साफ़, धुले नये कपड़े पहन लेता है।..."[84]

इसीतरह उन्होंने वेशभूषा का प्रयोग नई तरीके से किया है। उनका यह प्रयोग उनकी नाट्यभाषा को सार्थक बनाता है। राजस्थानी रीति-रिवाज़, वेशभूषा, त्योहार आदि से परिचित मणि मधुकर अपने नाटक में वेशभूषा के निर्देशन के अवसर पर राजस्थानी वेशभूषा का वर्णन किया गया है।

"लेखक : दर्जी ने पुतली को जोधपूरी लहंगा, जयपुरी बन्धेज की चुनड़ी, बिकानेरी अंगिया और खास जालौरी बूटेदार जूतियाँ पहनाकर अप्सरा की भांति सजा दिया।"[85]

4.1.39.5 ध्वनि

नाट्यभाषा की दृष्टि से ध्वनि का महत्वपूर्ण स्थान है। ध्वनि संयोजन नाटक में पूरा प्रभाव पैदा करता है। मणि मधुकर ने ध्वनि द्वारा पात्रों के भाव एवं मनोदशा का चित्रण किया है। भयानक वातावरण की सृष्टि के लिए उन्होंने ध्वनि का प्रयोग किया है। 'रसगंधर्व' नाटक में उन्होंने बैसाखी की 'ठकठक' आवाज़ द्वारा भय की अभिव्यक्ति किया है। मणि मधुकर ने यह आवाज़ सिर्फ आने की सूचना देने के लिए नहीं, बल्कि साधारण जन जीवन को भयावनी में ड़ालनेवाली उस सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति के प्रति जागरूक बनाने के लिए किया है। बंदूक छूटने की आवाज़ द्वारा आतंक के भीषण वातावरण प्रस्तुत करता है। इसीतरह युद्ध का वातावरण बनाने के लिए युद्ध का कोलाहल एवं गोलियाँ चलने की आवाज़, चीखपुकार आदि ध्वनियों का प्रयोग किया गया है।

उन्होंने पक्षियों के स्वर को भी ध्वनि संयोजन में शामिल किया है। भयानक एवं संघर्षमय वातावरण को सूचित करने के लिए पक्षियों के क्रूर स्वर को भी ध्वनि के रूप में स्वीकार किया।

> "इस बार कौओं की काँव-काँव के साथ अन्य पक्षियों के भी क्रूर स्वर।"[86]

उन्होंने अपने नाटक में धमाक, शोर ऐसी ध्वनियों का भी प्रयोग किया है। 'बादलों की 'गड़गड़ाहट' ध्वनि का प्रयोग पात्रों की भावाभिव्यक्ति करने में सहायक हुआ। दृश्य परिवर्तन के लिए भी उन्होंने ध्वनि का प्रयोग किया है।

ध्वनि द्वारा किसी अप्रस्तुत वस्तु को प्रस्तुत कर सकता है। 'बच्चों का शोर' यहाँ बच्चों की प्रस्तुती दिखाती है।

> "पृष्ठभूमि से बच्चों का शोर उभरता है। भगतराम का ध्यान उस तरफ चला जाता है। बूढा सिर झुकाए बैठ रहता है। तभी दो बच्चों की बातचीत सुनाई देती है।"[87]

उन्होंने ध्वनि के माध्यम से पात्रों की मनोदशा एवं जीवन संघर्ष को व्यक्त किया है। इसकेलिए उन्होंने ऐसा प्रयोग किया जो उनकी नाट्यभाषा को सार्थक बना दिया। स्त्री की हँसी के विविध रूप का चित्रण 'उमा' की भविष्य की ओर संकेत करती है और नाटक की मूल संवेदना एवं भाव की अभिव्यक्ति दी है।

संवाद एवं ध्वनि का सार्थक संयोजन उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है। 'बोलो बोधिवृक्ष' नाटक में अलग-अलग ध्वनियों का सम्मिश्रण करके उन्होंने प्रेक्षकों के मन में आकांक्षा भर दिया। उन्होंने

गोलियों की आवाज़, चीख पुकार, जै जै कार के साथ गज़ल एवं गीत को भी मिला दिया।

जंगल के अंधकारमय भयावह स्थिति को दर्शाने के लिए 'खेला पोलमपुर' नाटक में सियार की 'हुआँ-हुआँ' की आवाज़ का प्रयोग वातावरण एवं स्थिति को सफल बनाया है। नाटक में सफल ढंग से ध्वनि संयोजन करके उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को सार्थक बना दिया है।

ध्वनि के अंतर्गत उन्होंने गुंजायमान शब्दों का भी समावेश किया है। 'रसगंधर्व' नाटक में खाने की आवाज़ का भी प्रयोग रंगमंचीय आवश्यकतानुसार किया गया है। जैसे सब्बड़-सब्बड़ खाने शब्द का प्रयोग। इसीतरह चीं-चपड़, खद-बद, फदक-फदक, लद-फद, खटर-पटर आदि गुंजायमान शब्दों का प्रयोग भी उनके नाटकों में देख सकते हैं।

4.1.39.6 गीत

नाटक के भावात्मक प्रवाह में भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए गीत का प्रयोग किया जाता है। मणि मधुकर ने अपने अधिकांश नाटकों में गीत का प्रयोग किया है। नाटक के कथ्य को प्रभावशाली बनाने में उनका गीत सफल हुआ है। उनके नाटक में प्रस्तुत गीत कथ्य के साथ-साथ दृश्य योजना को सरल बनाता है। लोकनाट्य शैली

का प्रभाव उनके गीतों में भी देख सकता है। उन्होंने नाटक में गायक मण्डली द्वारा गीतों का प्रस्तुतीकरण किया है।

पात्रों के मनोभाव को प्रकट करने के लिए गीत का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। 'रसगंधर्व' नाटक में संतरी का मनोभाव गीत द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

"कौन था झींड़िया
कौन हो तुम
सुनो, आदमी की ओ दुम!
क्या पाया, क्या खोया तुमने रेल-पेल में
जीत-जीत कर हारे हरदम
खेल-मेल में
चुगली, गाली, साजिश का सन्ताप जेल में!
कौन था झींड़िया
कौन हो तुम
अबे आदमी की अड़दुम!
अब तुमको होना है अपने में ही गुम
गुम और सुम..... "[88]

कभी-कभी संवाद गीत का रूप धारण कर लेता है। उनके गीत जैसे संवाद नाटक में गायक मण्डली द्वारा सुर देकर गीत की तरह प्रस्तुत किया गया है। इसमें उन्होंने तुक का पालन करने का प्रयास किया है। भावाभिव्यक्ति के लिए उनका गीत सफल हुआ है। 'दुलारीबाई' नाटक में जूते को लेकर दुलारी के मन में उभरी बेचैनी, व्याकुलता और चिंता को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

"हो रामा, जूतों को लेकर कहां जाऊं रे!
हो क्रिस्ना, कैसे मैं इनसे पिंड छुड़ाऊं रे!
हो कान्हा, कितने चक्कर अब और लगाऊं रे, हो रामा-
हो ये मनहूस जूते बन गए मेरी जान के बवाल..."[89]

'दुलारी बाई' नाटक के गीत में कुचामणी ख्याल एवं पारसी रंगमंच का प्रभाव देख सकता है। उनके गीत कथासूत्रों को जोड़कर कथानक को आगे बढ़ाने में सहायता देती है।

पात्रों का परिचय देने के लिए उन्होंने अपने नाटक में गीत का प्रयोग किया है। 'बुलबुल सराय' नाटक में किसान का परिचय उन्होंने गीत के द्वारा किया है।

"गायक मण्डली : रेत-खेत चौतरफ....
बहुत गुमसुम वह वहाँ खड़ा था
भूखा था
लेकिन भूखे रहने का धैर्य बड़ा था
वह माटी का बेटा
माटी में लिपटा
घासफूस की एक लंगोटी पहने
जीवन से चिपटा"[90]

यहाँ किसान के चरित्र की विशेषताओं के साथ-साथ उनकी वेशभूषा का भी परिचय देता है। इसीतरह 'इकतारे की आँख' नाटक में कबीर के जीवन संघर्ष को व्यक्त करनेवाले गीतों का प्रयोग किया गया है। यह नाटक के कथ्य को सार्थक बनाता है। लोक नाट्यशैली के प्रभाव के कारण उन्होंने नाटक में गीत के साथ नृत्य का भी संयोजन किया है। इसीतरह दुलारी और कल्लू भांड की शादी के समय गाए गए गीत लोकनाट्य परंपरा का सशक्त उदाहरण है।

"बोलो रे बोलो, कल्लू भांड की जै बोलो-
भेष बदल कर आया*fff* जिओ!
जाना-पहचाना, वो ही दीवाना, और मस्ताना,

जाने क्या बाना सजाया*fff* जिओ!

जीवन है झांसा, पलट दे पासा, तज दे निराशा,

एक तमाशा- अच्छा-खासा बनाया*fff* जिओ!!..."[91]

गीतों का सार्थक प्रयोग उनकी नाट्यभाषा की विशेषता है।

4.1.39.7 संगीत

नाट्यभाषा के रूप में रंग संगीत का अपना महत्व है। नाटक में संगीत भी भाषा है। अमूर्त भावों की अभिव्यक्ति नाटक में संगीत द्वारा संभव है। संगीत के माध्यम से पात्रों के मानसिक संघर्ष को पूरी भावात्मकता के साथ अभिव्यक्त कर सकता है। नाटक की मूल संवेदना को अभिव्यक्त करने के लिए नाटक में संगीत का प्रयोग किया जाता है। मणि मधुकर ने अपने नाटकों में संगीत का कुशल प्रयोग किया है।

उन्होंने भाव एवं आंदरिक संघर्ष को दिखाने के लिए संगीत का प्रयोग किया है। उनके नाटक में संगीत का प्रयोग वैविध्य के साथ किया गया है। उन्होंने तीखे संगीत, आक्रामक संगीत, करुण संगीत, तीव्र संगीत, शांत संगीत, काँपता हुआ संगीत, भयावह संगीत आदि के प्रयोग से अपने नाटक की मूल संवेदना को उजागर किया है। उन्होंने संगीत द्वारा स्थिति एवं संदर्भ को सार्थक बना दिया है। उन्होंने 'अंधी आँखों

का आकाश' नाटक के प्रारंभ में करूण संगीत के साथ हल्की सी रोशनी का सुसंयोजन करके नाटक के मूल भाव को उभारने की कोशिश की।

"मंच पर अंधकार है। धीरे-धीरे पृष्ठभूमि से एक करुण संगीत उभरता है और उसके साथ ही हल्की-सी रोशनी बिखरने लगती है।..."[92]

यहाँ संगीत द्वारा पात्रों के अंतर्मन की उलझनों को व्यक्त किया गया है।

इसीतरह दृश्य परिवर्तन के लिए उन्होंने संगीत का प्रयोग किया है। उन्होंने 'बोलो बोधीवृक्ष' नाटक में मंगलाचरण के अवसर पर एक लोकप्रिय धारावाहिक के संगीत का व्यंग्यात्मक प्रयोग करके परंपरागत रूढ़ियों पर अपना विद्रोह प्रकट किया।

"टी वी पर एक लोकप्रिय 'धारावाहिक' का संगीत बजता है। कलाकार भरतनाट्यम्, कत्थक, ब्रेक डांस और लोकनृत्यों की कुछ भंगिमाओं के साथ मंत्रपाठ करते हैं।"[93]

लोकनाट्य परंपरा में अभिनय, नृत्य और संगीत, इन तीन तत्वों की प्रमुखता है। मणि मधुकर ने अपने नाटकों में इन तीनों को समावेश किया है। उन्होंने नाटक में 'कत्थक' का प्रयोग भी संम्मिलित किया। यह हिंदी नाट्यक्षेत्र में नवीन प्रयोग है। उन्होंने 'रसगंधर्व' नाटक में

राजकुमारी के पद संचालन को 'कत्थक' की शैली दिया। संगीत के प्रयोग के बारे में उनका कथन है- "मैं स्वयं राजस्थान के लोकनाट्य रूपों के पारंपरिक संगीत का आधुनिक संवेदना में इस्तेमाल करना चाहता था। संवादों को संगीत में प्रस्तुत करने और उनके भीतर कविता को उभारने का रास्ता मैं ढूँढ रहा था।"[94] उन्होंने अपने नाटकों में संगीत का संदर्भोचित प्रयोग करके अपनी नाट्यभाषा को प्रभावशाली बना दिया है।

4.2 निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कह सकता है कि उनकी नाट्यभाषा उनको नाट्यक्षेत्र में अलग पहचान दिया गया है। उन्होंने जन साधारण को ध्यान में रखकर जन सामान्य की भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने जनसामान्य की भाषा के साथ नए-नए प्रयोग करके उनकी नाट्यभाषा को अलग बनाया। उनकी नाट्यभाषा द्वारा दर्शक एवं पाठक उसके साथ तादात्म्य करके नाटक का एक अंग बन जाते हैं। उनके नाटक के हरेक शब्द अर्थ की दृष्टि से इतना विपुल है कि जो नाटक की मूल संवेदनाओं को उजागर करने में सक्षम है। इसी तरह भाषा के कण-कण में नाटककार की निजी विशेषता एवं प्रयोगात्मक कुशलता देखी जा सकती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मणि मधुकर के साथ महेश आनन्द और देवेन्द्रराज अंकुर की भेंटवार्ता के कुछ अंश, नटरंग 50-52 से साभार।
2. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.31
3. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.56
4. वही, पृ.28,29
5. वही, पृ.73
6. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.18
7. वही, पृ.17
8. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.52
9. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.18
10. मणि मधुकर, बुलबुल सराय, पृ.24-25
11. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.24-25
12. वही, पृ.38
13. वही, पृ.9
14. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.63

15. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.22

16. वही, पृ.27

17. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.29

18. वही, पृ.33

19. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.69

20. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.9

21. मणि मधुकर, इकतारे की आँख, पृ.32

22. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.20-21

23. वही, पृ.70

24. मणि मधुकर, बुलबुल सराय, पृ.54

25. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.17

26. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.16-17

27. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.33

28. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.54-55

29. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.52

30. मणि मधुकर, खेला पोलमपुर, पृ.40

31. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.42

32. मणि मधुकर, खेला पोलमपुर, पृ.14

33. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.41

34. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.16

35. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.30

36. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.16

37. मणि मधुकर, इकतारे की आँख, पृ.45

38. मणि मधुकर, अंधी आँखों का आकाश, पृ.75

39. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.75

40. मणि मधुकर, बुलबुल सराय, पृ.53

41. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.9-10

42. वही, पृ.21

43. वही, पृ.12

44. वही, पृ.59

45. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.64

46. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.79

47. मणि मधुकर, बुलबुल सराय, पृ.33

48. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.9

49. मणि मधुकर, बुलबुल सराय, पृ.69

50. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.10

51. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.45

52. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.14

53. वही, पृ.15

54. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.22

55. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.27

56. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.57

57. वही, पृ.34

58. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.53

59. वही, पृ.53

60. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.9

61. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.86

62. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.57

63. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.31

64. मणि मधुकर, बुलबुल सराय, पृ.73

65. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.55

66. वही, पृ.12

67. वही, पृ.50

68. मणि मधुकर, खेला पोलमपुर, पृ.19

69. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.15

70. वही, पृ.57

71. वही. पृ.59

72. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.41

73. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.11

74. वही, पृ.45

75. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.59

76. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.20-21

77. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.9

78. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.30

79. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.56

80. वही, पृ.51

81. मणि मधुकर, खेला पोलमपुर, पृ.53

82. मणि मधुकर, अंधी आँखों का आकाश, पृ.80

83. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.73

84. मणि मधुकर, खेला पोलमपुर, पृ.56

85. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.28

86. वही, पृ.21

87. मणि मधुकर, अंधी आँखों का आकाश, पृ.69

88. मणि मधुकर, रसगंधर्व, पृ.74-75

89. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.48

90. मणि मधुकर, बुलबुल सराय, पृ.71

91. मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ.68

92. मणि मधुकर, अंधी आँखों का आकाश, पृ.67

93. मणि मधुकर, बोलो बोधिवृक्ष, पृ.20

94. मणि मधुकर के साथ महेश आनन्द और देवेन्द्रराज अंकुर की भेंटवार्त के कुछ अंश, नटरंग 50-52 से साभार।

उपसंहार

उपसंहार

भाषा का साहित्यिक रूप अद्वितीय है। साहित्य एक भाषिक कला होने के कारण वह अन्य कलाओं से पृथक है। साहित्य की सभी विधाओं में नाटक का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि अन्य विधाओं से ज़्यादा नाटक मानव जीवन को सार्थक ढंग से प्रतिबिंबित करता है, और उनकी भाषिक विशेषता उन्हें अन्य कलाओं से अलगाती है। नाटक में भाषिक तथा भाषेतर माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। नाटक की भाषा संवाद के रूप में पात्रों के माध्यम से हमारे सामने आती है। नाट्यभाषा सिर्फ व्याकरणिक ढाँचे से बनी हुई नहीं है। इसमें समस्त रंगतत्त्वों का समावेश भी होता है। भाषा के लिखित रूप के साथ दृश्यविधान, अभिनय एवं समस्त मंचीय तत्त्वों का समावेश करके नाट्यभाषा अपना सार्थक रूप धारण कर लेती है।

शरीर की भाषा भी नाट्यभाषा का अभिन्न अंग है। अभिनेता के शरीर का अंग संचालन, उनकी चेष्टाएँ, शारीरिक हरकतें ये सब नाट्यभाषा में अपना अस्तित्व रखते हैं। नाट्यभाषा के अंतर्गत भाषिक एवं भाषेतर माध्यमों का सम्मिलन होने के कारण इसका दायरा असीमित है। रंगमंच से जुडे हुए तकनीकी पक्ष भी भाषा का काम करते

हैं। नाटक की भाषा मात्र पढ़ने के लिए नहीं सुनने या देखने के लिए भी है।

भारतेन्दु युग से लेकर आज तक के हिंदी नाट्य साहित्य में भाषा की दृष्टि से कई तरह के परिवर्तन आ चुके हैं। भारतेन्दु और उनके मण्डलियों ने समाज सुधार को प्रमुखता देने के कारण उन्होंने ऐसी एक भाषा को ढूँढा, जो जन मानस को जागृत करने के लिए सक्षम है। भारतेन्दु युग के बाद नाटक के क्षेत्र में अनुवाद की भरमार होने के कारण भाषा की दृष्टि से सफलतापूर्वक परिवर्तन उतना नहीं हुआ जितना पूर्ववर्ती युग में था। भारतेन्दु युग के बाद युग प्रवर्तक के रूप में प्रसाद का नाम गिन सकता है। उन्होंने अपनी नाट्य रचना द्वारा हिंदी नाट्यभाषा को एक नई दिशा प्रदान की। प्रसाद के बाद के नाट्य साहित्य दो दिशाओं में बहने लगे, इनमें एक प्रसाद की परंपराओं को लेकर चला और दूसरे में प्रसाद से अलग होकर रचना हुई। प्रसाद से अलग होकर बहनेवाली धारा प्रसादोत्तर युग के रूप में जानी जाती है। इस युग के नाटक अभिनय की दृष्टि में अधिक सफल हुए। स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने नाट्यभाषा में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। भाषा की दृष्टि से नाटककारों ने पुरानी मान्यताओं को तोड़कर नई भाषा की तलाश की। नए नाटक की सबसे बड़ी उपलब्धी है लोकनाट्य शैली का प्रयोग।

लोकनाट्य के विचारों, परंपराओं एवं शैलियों का हिंदी रंगमंच के लिए सफलतापूर्वक प्रयोग करनेवाले रचनाकारों में प्रमुख है मणि मधुकर।

नाटककार के व्यक्तित्व का प्रभाव निश्चय ही उनकी रचना में प्रतिफलित होता है। नाटककार की संवेदना एवं अनुभूति की अभिव्यक्ति उनकी भाषिक क्षमता का द्योतक है। मणि मधुकर ने युगीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर रचना की है। उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा है। उसी तरह भाषा पर भी उनके व्यक्तित्व की झलक है। बहुमुखी रचनाकार मणि मधुकर का सशक्त रूप नाटककार का है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से जीवन के सभी क्षेत्रों को छू लिया है। वे अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थितियों के प्रति जागरूक थे। इसलिए इन परिस्थितियों से गुज़रनेवाले सामान्य जन-जीवन की दयनीय स्थिति को उजागर करने में उनकी नाट्य रचनाएँ सफल हुईं। उनका नाटक संख्या में विरल है। लेकिन विषय की भरमार के कारण हिंदी नाट्य जगत को समृद्ध किया गया है। उनका नाटक आज के भारतीय परिवेश का ज्वलंत उदाहरण है।

मणि मधुकर ने अपनी अलग नाट्यशैली एवं भाषा द्वारा हिंदी नाट्य जगत को संपन्न बना दिया है। उन्होंने 'रसगंधर्व', 'दुलारी बाई', 'बुलबुल सराय', 'खेला पोलमपुर', 'बोलो बोधिवृक्ष', 'इकतारे की आँख',

'अंधी आँखों का आकाश', 'इलाइची बेगम' आदि नाटकों की रचना की। उनके सभी नाटक रंगमंच के लिए हैं।

मणि मधुकर ने अपने नाटकों के लिए सहज, स्वाभाविक, प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने पाठक एवं दर्शक को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने नए-नए भाषिक प्रयोगों द्वारा अपनी नाट्यभाषा को समृद्ध किया है। उन्होंने अपने संवादों में प्रतीक, मिथक, तुक, लय, मौन, विराम, अधूरा वाक्य, कथागायन, टिप्पण, विशेषण शब्द, उद्धरण, उदाहरण, पेरौडी, फंतासी, वाक्यों एवं शब्दों की पुनरावृत्ति आदि कई भाषिक प्रयोगों द्वारा नए-नए अर्थ का सृजन किया है।

मणि मधुकर की नाट्यभाषा विविधता एवं नवीनता से संपन्न है। उन्होंने पात्रों को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग किया। नाटक की भाषा में उन्होंने भिन्न-भिन्न स्रोतों से लिए गए शब्दों का भी प्रयोग किया है। तद्भव, देशी, विदेशी आदि क्षेत्रों से लिए गए शब्दों को पात्र एवं संदर्भ के अनुसार प्रयोग करके उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को जनजीवन के साथ अधिक जोड़ने का प्रयास किया है। इसके साथ उन्होंने अपनी भाषा को विशिष्ट एवं जन सामान्य के साथ जोड़ने के लिए मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं कहावतों का प्रयोग भी किया है।

रंगमंच के तकनीकी पक्ष को भी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर उन्होंने अपनी नाट्यभाषा को समृद्ध किया। उन्होंने अंधकार को भी पात्र के रूप में चित्रित करके अर्थाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मणि मधुकर की नाट्यभाषा बहुआयामी एवं बहुमुखी हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. मणि मधुकर - इकतारे की आँख
सरस्वती विहार, दिल्ली
प्र.सं.1980

2. मणि मधुकर - अंधी आँखों का आकाश
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नई दिल्ली
दू.सं. 1997

3. मणि मधुकर - खेला पोलमपुर
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं.1979

4. मणि मधुकर - दुलारी बाई
लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली
द्वि.सं.1981

5. मणि मधुकर - बुलबुल सराय
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.1978

6. मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष
लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं.1991

7. मणि मधुकर - रसगंधर्व
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
द्वि.सं.1978

एकांकी संग्रह

1. मणि मधुकर - सलवटों में संवाद
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.1979

उपन्यास

1. मणि मधुकर - मेरी स्त्रियाँ
हिंदी पॉकेट बुक्स, गुड़गाव, हरियाणा
सं.1982

2. मणि मधुकर - सफेद मेमने
हिंदी पॉकेट बुक्स, हरियाणा
सं.1979

कहानी संग्रह

1. सं. डॉ. जितेश सिंह - मणि मधुकर की यथार्थवादी कहानियाँ
सुप्रिया बुक्स, नई दिल्ली
प्र.सं.2017

2. मणि मधुकर - हे भानमती
हिंदी पॉकेट बुक्स, गुड़गाव
हरियाणा
सं.1981

काव्य संग्रह

1. मणि मधुकर - बलराम के हज़ारों नाम
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं.1978

संकलन

1. मणि मधुकर - पिछला पहाड़ा
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं.1979

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1. प्रो.डॉ.ए. अच्युतन - दयाप्रकाश सिंहा - नाट्य रचना धर्मिता
परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.2008

2. सं. अर्चना अग्रवाल - कुँवरजी अग्रवाल, नाट्य के अक्षरबीज
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.2013

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.2018

4. डॉ. आसाराम बेवले - समकालीन हिंदी नाटकों में नारी के विविध रूप
समता प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं.2006

5. डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव - कॉलरिज और उनका साहित्यशास्त्र
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
सं.2004

6. डॉ. उमा आर. हेगडे - समकालीन हिन्दी नाटक युगबोध
अमन प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. 2016

7. सं. कन्हैयालाल जोशी - भरतमुनि प्रणीतं नाट्यशास्त्रम्, श्रीमदभिनवगुप्ताचार्य विरचितया अभिनवभारती-संस्कृतव्याख्याया (समुद्भासितम्)
द्वितीयोभाग : अध्याय:8-18
परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली
सं.1984

8. डॉ. किशोर साहु - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाट्यभाषा
परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 2016

9. डॉ.कृष्ण कुमार गोस्वामी - शैलीविज्ञान और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा
अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
सं.1996

10. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
भारतेन्दु भवन, चंडीगढ़
सं.1965

11. गिरीश रस्तोगी - रंगभाषा
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली
सं.1999

12. डॉ.गोरखनाथ माने - साठोत्तरी हिंदी नाटकों में चित्रित यथार्थ
साहित्य सागर, कानपुर
सं.2008

13. डॉ. गोविन्द चातक - आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक एवं संवादीय संरचना
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.1997

14. डॉ. गोविन्द चातक - नाट्यभाषा
तक्षशिला प्रकाशन,
नई दिल्ली
द्वितीय सं. 2010

15. चंद्रा - नाट्य चिंतन नए संदर्भ
साहित्य रत्नालय, कानपुर
प्र.सं.1987

16. डॉ. जशवंत भाई. डी.पाँड्या - समकालीन हिंदी नाटक
ज्ञान प्रकाशन, कानपुर
सं.2006

17. डॉ. जितेश सिंह - मणि मधुकर के साहित्य में
अभिव्यक्त युगबोध
ऐप्पल बुक्स, दिल्ली
प्र.सं.2014

18. डॉ. ज्योति मुंगल - हिंदी भाषा तथा साहित्य अनुशीलन
ए.बी.एस पब्लिकेशन
वाराणसी
प्र.सं. 2013

19. डॉ. दशरथ ओझा - हिंदी नाटक उद्भव और विकास
(संशोधित तथा परिवद्धित
संस्करण)
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
सं. 2003

20. प्रो. दिलीप सिंह - भाषा का संसार (आधुनिक भाषा विज्ञान की सुगम क्षूमिका)
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

21. देवदत्त कौशिक - अरस्तु का त्रासदी विवेचन
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंड़िया लिमिटेड़, नई दिल्ली
सं. 1977

22. डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता - सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में रंगमंचीयता
भावना प्रकाशन, दिल्ली
सं.1986

23. डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता - हिंदी नाट्यशिल्प बदलती रंगदृष्टि
पीयूष प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.2005

24. देवेन्द्र राज अंकुर - पहला रंग
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1999

25. डॉ. देवेन्द्र स्वामी - आधुनिक नाटक दृष्टि एवं शिल्प
भावना प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.2006

26. सं. नन्द किशोर नवल - हिंदी साहित्य शास्त्र
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.2003

27. सं. डॉ. नरेन्द्र मोहन - समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.2009

28. नेमिचंद्र जैन - दृश्य-अदृश्य
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.1994

29. नेमिचंद्र जैन - रंग दर्शन
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
सं.1977

30. नेमिचंद्र जैन - रंग परंपरा- भारतीय नाट्य में निरतंरता और बदलाव
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.1996

31. सं.डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत अंधेर नगरी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
सं.2002

32. डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय - हिंदी नाटक एवं रंगमंच
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र)
सं.2009

33. डॉ. प्रेमलता - आधुनिक हिंदी नाटक और भाषा की सृजनशीलता
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
सं.1993

34. डॉ. भानुदेव शुक्ल - नया हिंदी नाटक
जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं.1993

35. डॉ.भीमप्प एल. गुंडूर - हिंदी नाटक साहित्य और लक्ष्मीनारायण लाल
अमन प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं.2009

36. डॉ.भोलानाथ तिवारी - भाषा विज्ञान
किताब महल, इलाहाबाद
सं. 2009

37. प्रो. मदन लाल - नाटककार मोहन राकेश : **सं**वाद-शिल्प
दिनमान प्रकाशन, दिल्ली
सं.1991

38. महेश आनंद - रंग दस्तावेज़ सौ साल (1850-1950) खंड-एक
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय
नई दिल्ली
प्र.सं. 2007

39. महेश आनंद - रंग दस्तावेज़ सौ साल (1850-1950) खंड-दो
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय
नई दिल्ली
प्र.सं. 2007

40. डॉ. मीरा निचले - माध्यम, साहित्य तथा भाषा : विविध आयाम
ए.बी.एस पब्लिकेशन
वाराणसी
प्र.सं. 2016

41. मोहन राकेश - साहित्य और संस्कृति
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.1990

42. सं.योगेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ. संजय कुमार सिंह - काव्यभाषा : भारतीय पक्ष
साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड़
इलाहाबाद
प्र.सं.2006

43. सं. रमेश गौतम - हिंदी रंगभाषा स्वरूप और विकास
स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2015

44. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - भाषा-संवेदना और सर्जन
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
सं.1996

45. डॉ. लवकुमार - बीसवीं शताब्दी का हिंदी रंगकर्म
विकास प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. 2015

46. लवकुमार लवलीन - समकालीन रंगधर्मी नाटककार
विकास प्रकाशन, कानपुर
सं.2010

47. डॉ. एन. लक्ष्मी - कथाभाषा और काव्यभाषा का समाज भाषिक संदर्भ
क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर
सं. 2015

48. डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज - नाट्यालोचना
राजेश प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 2008

49. डॉ.लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, के. एल. पचौरी - रंगमंच लोकधर्मी-नाट्यधर्मी
गाजियाबाद
सं. 1992

50. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - पारसी-हिंदी रंगमंच
राजपाल एम्ड़ सन्ज़, दिल्ली
सं. 1973

51. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - रंगमंच और नाटक की भूमिका
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
प्र.सं. 1965

52. डॉ. लीना. बी.एल - मिथक नाटक और रंगमंच
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
सं.2012

53. डॉ. वसंत पुंजाजीराव गाड़े - समकालीन हिंदी नाटकों में पशु प्रतीक
श्रीमान प्रकाशन, कानपुर
सं. 2014

54. डॉ. बी.वाय वानमारे - हिंदी एब्सर्ड नाट्य साहित्य
अभय प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं.2008

55. डॉ.विजय कुमार पाण्डेय - अज्ञेय के उपन्यासों की भाषा
साहित्य रत्नालय, कानपुर
प्र.सं.2005

56. डॉ. विजय वाघ - नाटककार मणि मधुकर
विकास प्रकाशन, कानपुर
सं.2009

57. सं. विनय - समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच
भारत भाषा प्रकाशन, दिल्ली
सं.1978

58. शर्मिला बागची - संस्कृत नाटकों में एकालाप
भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली
सं.2004

59. डॉ.एन. शान्तम्मा - जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश के नाटकों में संवाद योजना
जवाहर पुस्तकालय
मथुरा (उ.प्र)
सं.2008

60. डॉ. शिवकुमार शर्मा - हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ
अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली
सं.2009

61. डॉ. शेख आर. वाय - नरेन्द्र मोहन का नाट्य संसार
अतुल प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं.2010

62. सत्यदेव त्रिपाठी - हिंदी रंगमंच समकालीन विमर्श
अनन्य प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.2017

63. सत्यदेव मिश्र - पाश्चात्य काव्यशास्त्र : अधुनातन संदर्भ
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं.2003

64. सं. सत्येन्द्र कुमार तनेजा - नाटककार जयशंकर प्रसाद
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र.सं.1997

65. डॉ. सुरेश बी. पटेल - हिंदी नाटक और मिथक
अभय प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं.2016

66. डॉ.सूरज प्रसाद पचौरी - नए प्रतीक नाटक
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र)
प्र.सं.2007

67. डॉ.संजय द्विवेदी - प्रसाद की नाट्यभाषा
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.1991

68. संजय सिंह बघेल - हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं.2020

69. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और पृथ्वीनाथ द्विवेदी - नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक (धनिक की वृत्तिसहित)
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
सं.1963

70. हरीश नवल - हिंदी नाटक : तीन दशक
अनंग प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.2004

मलयालम ग्रन्थ

1. डॉ. एन.आर.ग्रामप्रकाश और डॉ.सी.आर संतोष - भरतमुनियुटे नाट्यशास्त्रम 'नाट्यभारती' व्याख्यानम्
कैरली बुक्स, कण्णूर
प्र.सं.2015

2. एन. एन. पिल्ला - नाटक दर्पणम्
करन्ट बुक्स, तृशूर
सं. 1971

3. मुरलीधरन मुल्लमट्टम् - नाटक पठनसहायी- विद्यार्थिकलक्क (रंगकलयुटे मनशास्त्रम्)
लिवा बुक्स, कालिकट
प्र.सं.2020

4. डॉ.के. श्रीकुमार - मलयाला संगीत नाटक चरित्रम्
करन्ट बुक्स, तृशूर
सं. 2002

5. डॉ.टी.एन. सतीशन - आर. कुञ्ञिरामन नायरुटे काव्य बिंबङ्ङल- ओरपग्रथनम्
लिपि पब्लिकेशन्स, कालिकट
सं. 2002

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

1. ए.सी गुड्सन - वेरबल इमेजिनेशन : कॉलरिज & द लैंग्वेज ऑफ मोडेण क्रिटिसिज़्म
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क
सं.1988

2. गैरेथ लॉयड़ इवांस - द लैंग्वेज ऑफ मोड़ेण ड्रामा
जे. एम. डेंट एंड़ सन्स लि., लंदन
सं. 1977

3. डेविड़ बिर्च - द लैंग्वेज ऑफ ड्रामा क्रिटिकल थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस
द मैकमिलन प्रेस. लि., लंदन
सं.1991

4. सं.ऐ.ए रिचार्ड्स - द पोर्टेबल कॉलरिज
पेंग्विन बुक्स
सं. 1977

कोश

1. सं.डॉ. नगेन्द्र - भारतीय साहित्य कोश
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली
सं.1981

2. सं. प्रतिभा अग्रवाल - भारतीय रंग कोश संदर्भ : हिंदी खण्ड-1
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय
नई दिल्ली
सं. 2005

3. डॉ. रामचंद्र तिवारी - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- आलोचना कोश
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
प्र.सं.1986

4. सं. रामचंद्र वर्मा - मानक हिंदी कोश- पाँचवाँ खण्ड
हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
स.1966

5. सं. रामचंद्र वर्मा - संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
सं.1989

6. सं.डॉ. सुरेश गौतम, डॉ. वीणा गौतम - भारतीय साहित्य कोश-खण्ड-3 संजय प्रकाशन, दिल्ली सं. 2008

पत्रिकाएँ

1. अनुशीलन - समकालीन नाटक में भारतीयता (विशेषांक), प्रधान सं.प्रो. (डॉ.) आर. शशिधरन, सं.डॉ.के. अजिता, हिंदी विभाग, कोच्चि विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चि, जनवरी-2012

2. आजकल - प्रधान सं. राकेश रेणु, सं.फरहत परवीन, अंक-10, फरवरी-2023, सूचना भवन, नई दिल्ली

3. एक और अंतरीप (त्रैमासिक पत्रिका) - सं.प्रेमकृष्ण शर्मा, वर्ष-20, अंक-6, अक्तूबर-दिसंबर, 2012, जयपुर

4. के. हि. सं. गवेषणा - प्रधान सं. प्रो.बीना शर्मा, सं.डॉ. सपना गुप्ता। अंक-127, जनवरी-मार्च, 2022 केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

5. नटरंग (भारतीय रंगमंच का त्रैमासिक पत्रिका) - कारंत विशेष, संस्थापक सं. स्व. नेमिचन्द्र जैन, सं. अशोक वाजपेयी, रश्मि वाजपेयी, खण्ड-24, अंक- 97-98, जुलाई-दिसंबर 2014

6. नटरंग (भारतीय रंगमंच का त्रैमासिक पत्रिका) - संस्थापक सं. स्व. नेमिचन्द्र जैन, सं. अशोक वाजपेयी, रश्मि वाजपेयी, खण्ड-30, अंक-115-116, मार्च-जून, 2022

7. मधुमति - प्रधान संपादक एवं अध्यक्ष- डॉ.इन्दुशेखर 'तत्पुरुष', अंक-06, जून-2017, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

वेबसाइट

1. https://archive.org
2. https://bharatanatyamnataraja.wordpress.com
3. https://www.britannica.com
4. https://epustakalay.com
5. https://hi.wikipedia,org
6. https://www.hindisamay.com
7. https://www.hindistack.com
8. https://www.jnpg.org.in>art
9. https://m.bharatdiscovery.org>india
10. https://prayog.pustak.org
11. https://www.rajasthanstudy.co.in
12. https://youtu.be/FnDQYzrCKjg?si=VG11Vk1B2vmegrxb
13. https://youtu.be/4DpGmnP7BBc

परिशिष्ट

परिशिष्ट

अध्ययन की संभावनाएँ (Recommendations)

भाषा संप्रेषण का साधन है। भाषा और साहित्य के बीच अटूट संबन्ध है। हरेक साहित्यिक विधा को अपनी एक भाषिक शैली होती है। साहित्य में नाटक का प्रमुख स्थान है। क्योंकि नाटक का लक्ष्य मानव जीवन का अनुकरण है। नाटक का भाषिक ढ़ाँचा अलग होने के कारण साहित्य की सभी विधाओं में नाटक को अलग पहचान है।

प्रस्तुत शोध 'मणि मधुकर की नाट्यभाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन' पर केन्द्रित है। मणि मधुकर बहुमुखी प्रतिभा का कलाकार है। इस अध्ययन के बीच मणि मधुकर के साहित्य से संबन्धित अन्य कई मुद्दे भी मिली हैं, जिसपर शोध किया जा सकता है। कुछ प्रमुख मुद्दे हैं -

- मणि मधुकर की नाट्यभाषा का शैली वैज्ञानिक अध्ययन।
- लोकनाट्य शैली एवं मणि मधुकर के नाटक।
- एब्सर्ड नाटकों की भाषा एवं मणि मधुकर के नाटक।
- मणि मधुकर के नाटकों में अभिव्यक्त मूल्य संक्रमण की समस्या।
- मणि मधुकर के नुक्कड़ नाटकों की भाषा।